आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्दभाव धारा की प्रमुख हि[illegible] मासिकी

वर्ष–१८ अप्रैल–१९९९ अंक–४

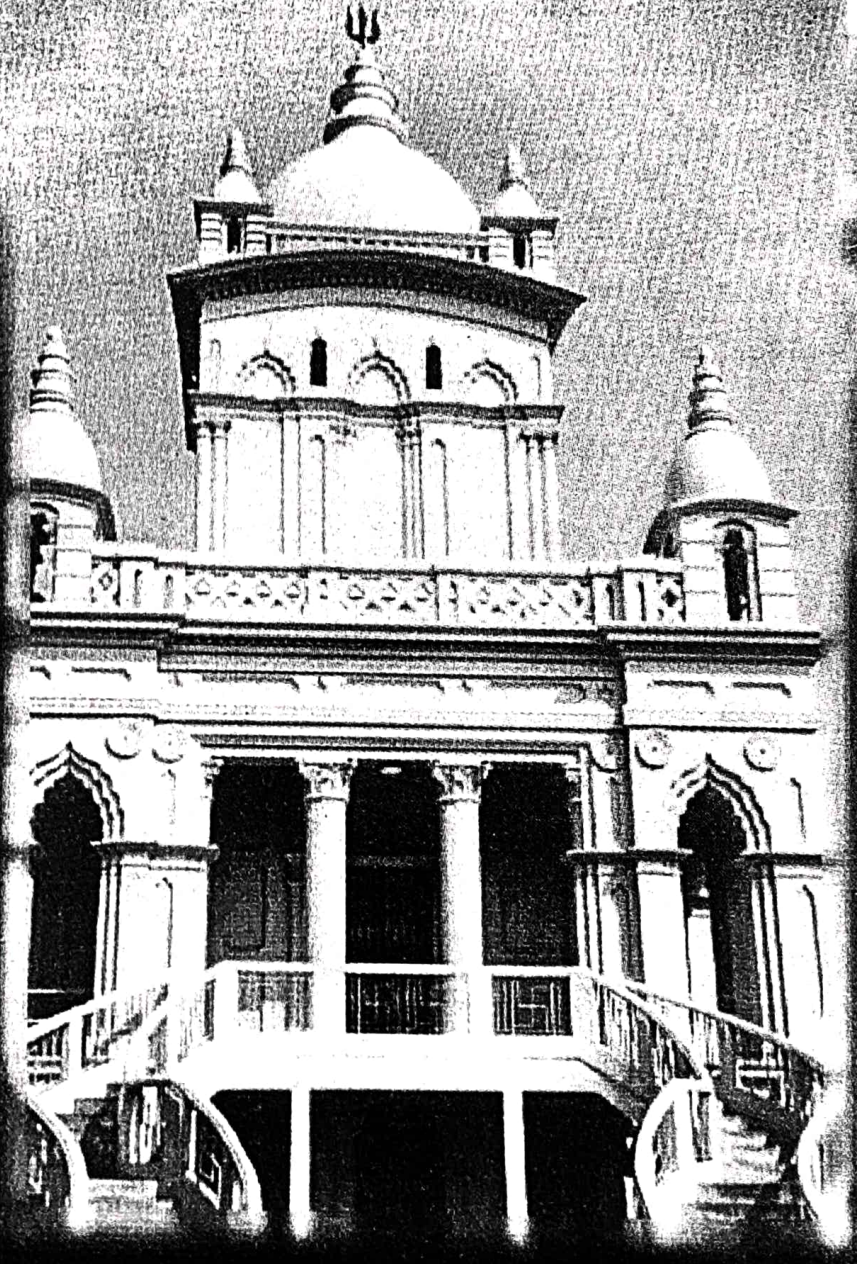

रामकृष्णनिलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजूभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौरड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पाहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३ श्री ओम भक्त बुढाथोकी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)
२०५. हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी—काराधीक्षक, गिरिडीह

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. रामकृष्ण गुण गा ले (भजन)	डॉ० केदारनाथ लाभ	२
३. भगवान बुद्ध	स्वामी विवेकानन्द	३
४ श्री माँ सारदा सन्देश-सुधा		५
५. जननी सारदा देवी	स्वामी गौरीश्वरानन्द	५
६. दरिद्रता उन्मूलन में ज्ञान की भूमिका	स्वामी भजनानन्द	७
७. स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान	स्वामी शशांकानन्द	१०
८. श्रीमत् आद्य शंकराचार्य	श्री राजा भाऊ लिमये	१७
९. धर्म का बदलता स्वरूप और समाज (युवामंच)	कु० ऋचा रश्मि	२५
१०. गुरुगोविन्द सिंह का खालसा संदेश	रवीन्द्र कुमार गांधी	२७
११. रामकृष्ण मिशन, पोर्ट ब्लेयर : कर्म मन्दिर का श्री अटलविहारी बाजपेयी द्वारा उद्घाटन		२९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ अप्रैल—१९९९ अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२१६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

□ संसारासक्त व्यक्ति किस प्रकार का होता है? वह मानो हण्डी में पाले हुए नेवले की तरह होता है। नेवला पालनेवाले नेवले के लिए दीवार पर एक हण्डी या गमला लटका देते हैं और नेवले के गले में एक रस्सी बाँधकर उसके दूसरे छोर में एक भारी ईंट बाँध देते हैं। नेवला हण्डी में से निकलकर दीवार के नीचे उतरकर इधर-उधर घूमता है पर जब आहट पाकर चौंक जाता है तो झट ऊपर चढ़कर हण्डी में छिप जाता है। परन्तु वह हण्डी में अधिक समय तक नहीं रह पाता। उसके गले की रस्सी के दूसरे छोर पर जो ईंट बँधी होती है, उसका भार उसे नीचे खींच लाता है। संसारी जीव का भी यही हाल है। संसार के दुःख-कष्टों से पीड़ित हो बीच-बीच में वह मजबूर हो संसार के ऊर्ध्व उठकर भगवान् का आश्रय ग्रहण करता है, परन्तु वह उस अवस्था में अधिक समय के लिए नहीं रह पाता, संसाररूपी ईंट के बोझ से वह फिर नीचे उतर आकर संसार में मग्न हो जाता है।

□ जो अपने भावों के राज्य में चोरी-धोखेबाजी नहीं करता वही परमधाम को पहुँच सकता है। अर्थात् सरल विश्वास और निष्कपट भाव से ही सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

□ शान्तिपूर्ण साधु जीवन बिताना हो तो लोगों की निन्दा-स्तुति दोनों के बारे में समान रूप से उदासीन रहो।

भजन

रामकृष्ण गुण गा ले !

—डॉ० केदारनाथ लाभ

रामकृष्ण गुण गा ले, रे मन !
रामकृष्ण-गुण गाकर नश्वर जीवन सफल बना ले, रे मन !

जीवन की संध्या अब आई
रही नहीं चंचल तरुणाई !
अब तो जाल समेट मछेरे
मरण-घटा माथे पर छाई।
जीवन के इस निविड़-तिमिर में प्रभु का दिया जला ले, रे मन !

बीत गये वे दिन मदमाते
टूट गये सब रिश्ते-नाते
विषय-वासना की खँजरी पर
तू थक गया नाचते-गाते
रामकृष्ण की वट-छाया में जीवन-थकन मिटा ले, रे मन !

प्रभु भव-बन्धन खण्डनकारी
पाप - ताप दारुण - दुःखहारी
रामकृष्ण सुख-शान्ति-धाम हैं
रामकृष्ण आनन्द - बिहारी
वे ही तेरे योग-क्षेम के पल पल हैं रखवाले, रे मन !

लुटा लुटा सब कुछ तू हारा
रहा न कोई एक सहारा
जग की रीति देख ली तू ने
तू बन गया एक बंजारा
अपने हृदय-स्वर्ण मन्दिर में ठाकुर को बैठा ले, रे मन !

रामकृष्ण गुण गा ले, रे मन !

बुद्ध पूर्णिमा : ३० अप्रैल

भगवान् बुद्ध

—स्वामी विवेकानन्द

प्रत्येक धर्म में हम किसी एक प्रकार की साधना को चरम सीमा तक पहुँची हुई पाते हैं। बौद्ध धर्म में निष्काम कर्म का भाव अत्यंत विकसित है। तुम लोग बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल न करो। बौद्ध धर्म हमारे सम्प्रदायों में से एक है। भारतीय वर्ण व्यवस्था, कठिन कर्मकांडों एवं दार्शनिक वाद-विवादों से ऊबकर गौतम नामक एक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा एक विशेष कुल में जन्म हुआ है और इसलिए हम उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जिनका जन्म ऐसे वंश में नहीं हुआ। भगवान् बुद्ध का इस सिद्धांत में कोई विश्वास न था—वे इस प्रकार के जाति-भेद के विरोधी थे। और पुरोहित लोग धर्म के नाम पर जो कपटाचरण द्वारा स्वार्थ सिद्धि करते थे, इसके भी वे घोर विरोधी थे। इसलिए—उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया, जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान न था। वे दर्शन तथा ईश्वर के संबंध में सम्पूर्ण अज्ञेयवादी थे।

उनसे कई बार ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में प्रश्न पूछे गए, पर उन्होंने सदैव यही उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता।" उनसे पूछा गया कि मनुष्य का प्रकृत कर्त्तव्य क्या है। उन्होंने कहा, "शुभ-चरित्र बनो और शुभ कर्म करो।" एक बार पाँच ब्राह्मणों ने आकर उनसे विनती की, "भगवान, हमारे वाद-विवाद का न्याय कीजिए।" उनमें से एक ने कहा; "भगवान, मेरे शास्त्रों में ईश्वर का यह स्वरूप बतलाया गया है और उसकी प्राप्ति के लिए यह मार्ग दर्शाया गया है।" दूसरे ब्राह्मण ने कहा, "नहीं, यह सब मिथ्या है, क्योंकि मेरे शास्त्रों में इसके विपरीत लिखा है और ईश्वर-प्राप्ति का अन्य मार्ग बतलाया गया है।" इस प्रकार दूसरों ने भी शास्त्रों की दुहाई देकर ईश्वर के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में अपने-अपने मत प्रकट किए। बुद्धदेव यह विवाद शांति-पूर्वक सुनकर उनसे क्रमशः पूछने लगे, "क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है? किसी को हानि पहुँचाता है या अशुद्ध है?" उन सबने कहा, "नहीं भगवन्, हमारे सभी शास्त्र यही कहते हैं कि ईश्वर शुद्ध, विकार रहित और कल्याणकर है।" भगवान बुद्ध बोले, "मित्रों, तब तुम पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, जिससे तुम्हें ईश्वर का ज्ञान हो सके।"

मैं बौद्ध दर्शन से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। मुझे अपने लिए दार्शनिक विचारों की यथेष्ट आवश्यकता प्रतीत होती है। मेरा बुद्ध के कई सिद्धांतों से मतभेद हैं, किंतु यह मेरे उस महान् आत्मा के चरित्र एवं भाव-सौंदर्य के दर्शन में बाधक नहीं है। बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं। ऐसे अन्य अनेक महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अंतिम क्षण तक यही शब्द थे, 'अपनी मुक्ति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य

कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।' अपने सम्बन्ध में भगवान बुद्ध कहा करते थे, 'बुद्ध शब्द का अर्थ है—आकाश के समान अनंत ज्ञान सम्पन्न, मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गई है। तुम भी यदि प्राणपण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त कर सकते हो।' बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा नहीं थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी। अपने राज-पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिन्धु-सा विशाल हृदय लेकर नर-नारी तथा जीव-जन्तुओं के कल्याण के लिए, आर्यावर्त की वीथी-वीथी में भ्रमण कर भिक्षा-वृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया। जगत् में वे ही एकमात्र ऐसे हैं, जो यज्ञों में पशु-बलि निवारणार्थ, किसी प्राणी की जीवन-रक्षा के लिए अपना जीवन भी निछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने एक राजा से कहा, "यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग-प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के होम से और किसी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन्, उस पशु के पाश काटकर मेरी आहूति दे दो—शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।" राजा स्तब्ध हो गया!

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् बुद्ध पूर्ण रूप से निष्काम थे। वे कर्मयोग के ज्वलंत आदर्श-स्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गए थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्म-शक्ति द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

ईश्वर में विश्वास रखने से अनेक व्यक्तियों का मार्ग सुगम हो जाता है। किन्तु बुद्ध का चरित्र बताता है कि एक ऐसा व्यक्ति भी, जो नास्तिक है, जिसका किसी दर्शन में विश्वास नहीं, जो न किसी सम्प्रदाय को मानता है और न किसी मन्दिर-मस्जिद में ही जाता है, जो घोर जड़वादी है, परमोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के मतामत या कार्यकलापों का मूल्यांकन करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उनके विशाल हृदय का सहस्रांश पाकर भी मैं स्वयं को धन्य मानता। बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से मुझे कोई मतलब नहीं। उन्हें भी वह पूर्णावस्था प्राप्त हो गई थी, जो अन्य जन भक्ति, ज्ञान या योग के मार्ग से प्राप्त करते हैं। केवल इसमें-उसमें विश्वास करने से ही पूर्णता प्राप्त नहीं होती, कल्पना से कोई अर्थ-सिद्धि नहीं होती। यह तो शुक-सारिका भी कर लेते हैं। केवल निष्काम कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।

[अमेरिका के डिट्रायट नगर में स्वामीजी द्वारा दिया गया भाषण]

भगवान् के लिए व्याकुलता किस प्रकार की होनी चाहिए? जब किसी व्यक्ति की नौकरी छूट जाती है और वह नौकरी की खोज में एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर भटकता फिरता है तब उसमें जैसी व्याकुलता होती है, वैसी।

—श्रीरामकृष्णदेव

श्री माँ सारदा सन्देश-सुधा

☐ ठाकुर को मन की बात बताते हुए प्रार्थना करना, रो-रोकर हृदय का दुःख कह सुनाना, देखोगे, वे बिल्कुल गोद में उठा लेंगे।

☐ गुरु के प्रति भक्ति रहनी चाहिए। गुरु चाहे जैसे भी हों, उनपर भक्ति रखने से ही मुक्ति होती है। ठाकुर की सन्तानों में कितनी गुरु-भक्ति है, देखो न! इस गुरुभक्ति के कारण ही वे लोग गुरुवंश के सभी को, यहाँ तक कि उनके देश की बिल्ली तक को सम्मान देते हैं।

☐ पति कहो, पुत्र कहो या अपनी देह कहो—सब माया है। माया के ये बन्धन काटे बिना पार नहीं हुआ जा सकता।···कैसी देह बेटी? डेढ़ सेर राख छोड़ और क्या है! इस पर गर्व कैसा? कितनी भी बड़ी देह क्यों न हो, जलने पर तो वही डेढ़ सेर राख बचेगी।

☐ मन तो बेटी, मतवाला हाथी है। वह वायु के साथ-साथ दौड़ता है। इसीलिए सभी कुछ सदसत्-विचारपूर्वक देखना पड़ता है।

☐ मैं तुमलोगों को क्या कहूँ बेटी! मैं तो कुछ जानती नहीं! अपने पास ठाकुर का एक चित्र रखना और उन्हें सत्य समझना। वे तुम्हारे निकट हैं। उनके पास व्याकुलता पूर्वक रो-रोकर अपने मन का दुःख बताते हुए कहना—"मुझ अपनी ओर खींच लो, मुझे शान्ति दो।" ऐसा करते-करते तुम्हारे प्राणों में अपने आप ही शान्ति आ जाएगी।

जननी सारदा देवी (२)

स्वामी गौरीश्वरानन्द
अनुवाद—अरुणदेव भट्टाचार्य

यह बात उस समय की है जब महाराज अध्यक्ष थे और महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) प्रबन्धक थे। मैं उस समय बेलुड़ में था। महाराज सारे रामकृष्ण मठ और मिशन के होते हुए भी सब काम स्वयं ठीक-ठीक हो रहा है या नहीं देखते थे। उनके पास जाने में हम सबों को भक्ति के साथ भय भी मिश्रित रहता था क्योंकि ज्यादातर वे बहुत गम्भीर स्वभाव के लगते थे। मैं उनको किसी तरह से प्रणाम करके ही बैठ जाता था उनके पास में। स्वामी जी ने उनको अध्यक्ष बनाया था, स्वयं नहीं बने थे क्योंकि उन्होंने ठाकुर के श्रीमुख से ही सुना था कि

राखाल इतना विद्वान है कि वह एक राज्य शासन कर सकता है। स्वामीजी ने उनको रामकृष्ण राज्य का अधिपति बना दिया था और उनको 'राजा' कहकर पुकारते थे। हम सब छोटे होने के नाते उनको "राजा महाराज" कहते थे। यही राजा महाराज जो सम्पूर्ण रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष हैं माँ के आने पर गलवस्त्र होकर हाथ जोड़कर माँ के सामने आते थे। माँ के पीछे-पीछे चलते थे छोटे बच्चों का तरह। माँ भी उनको अत्यधिक स्नेह करती थी। माँ ने एकबार काशी में रहते समय राजा महाराज को छोड़कर अन्य सब साधुओं को सूती कपड़े दिये थे और राजा महाराज को सिल्क के कपड़े दिये थे। इसका कारण पूछने पर माँ ने उत्तर दिया था, "बेटा जो है।" इस पर प्रश्न उठा था कि 'और सब उनके बेटे नहीं हैं क्या?' माँ नेजबाब दिया था, "अवश्य ही सब मेरी ही सन्तान है परन्तु राखाल, ठाकुर का जो मानसपुत्र है। एक ही सिल्क का कपड़ा था, इस कारण उसको दिया है।" इसी से माँ के आने पर राजा महाराज इस तरह का आचरण करते थे। एक दिन राजा महाराज बेलुड़ मठ में प्रातः उठकर हर रोज जैसा ध्यान कर रहे थे। उस दिन उनका ध्यान इस सीमा तक जम गया था कि प्रात्यहिक चाय-पानी का समय निकला जा रहा था। उनके चाय पीने का समय निकला जा रहा था। वे चाय पीते समय परिपाटी आयोजन पसन्द करते थे—जैसे चाय गरम-गरम और अच्छी होनी चाहिए, पीने की प्याली अच्छी होनी चाहिए, साथ में थोड़ा कुछ खाने का होना आदि। परन्तु राजा महाराज को कितने ही कष्ट झेलने पड़े थे। इस प्रसंग में वह घटना याद आती है जब उद्बोधन में आने पर योगिन माँ ने नानाविध खाने की वस्तुएँ सजा देने पर महाराज उससे थोड़ा-थोड़ा खाये थे। उसको देखकर योगिन माँ बोली थी, "जब तुम खा सकते थे जब तुमको मिलता नहीं था।" उसदिन ध्यान इस तरह जम गया था कि महाराज आँखें भी नहीं खोल रहे थे। सेवकों के उनके कान के पास जोर-जोर से बोलने पर भी उनका ध्यान भंग नहीं हो रहा था। वे घबड़ाकर माँ के पास 'सोनार बागान' में जाकर उनको इसकी सूचना दी थी। जिसको एक यह 'सोनार बागान' बेलुड़ मठ के पास ही था। माली देखभाल करता था जिसका नाम था सोनामणि—उसी के नाम पर बगीचे का नामकरण हो गया था। मकान का मालिक ज्यादातर रहता नहीं था और माँ के आने पर मकान खोल देता था। इधर महाराज गम्भीर ध्यानमग्न थे। सेवकगण को डर था कि महाराज ध्यानमग्न होकर महासमाधि में शरीर त्याग न कर दें। सुनकर माँ बोली थी, "नहीं, ऐसा नहीं, बेटे का ध्यान आज जम गया है, यह प्रसाद ले जाओ और उनको बोलो माँ ने प्रसाद दिये हैं। उस पर भी सेवकगण नाकाम रहे. महाराज का ध्यान भंग फिर भी नहीं हुआ। बहुत कोशिशों के बावजूद सफल न होने पर सेवकगण रोते-रोते पुनः माँ के पास पहुँचे थे और निवेदन किया था कि विपद उपस्थित लगता है। माँ हँसते-हँसते उनके साथ महाराज के पास पहुँची थी। जैसे ही माँ महाराज के कंधे पर हाथ रखकर बोली, "बेटा! राखाल! उठो," तुरन्त गम्भीर समाधि अवस्था से उत्थित होकर माँ को सामने देखकर एकदम दडवत् प्रणाम। माँ उनके मस्तक पर हाथ रखकर बोली, "बहुत देर हो गयी है। प्रसाद दिया है तुम्हारे लिए। उठो बेटा, प्रसाद खाओ।" ऐसी थी हमारी जननी माँ। (क्रमशः)

दरिद्रता-उन्मूलन में ज्ञान की भूमिका

—स्वामी भजनानन्द, सहायक सचिव;
रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़ मठ
अनुवादक—स्वामी उरुक्रमानन्द,
रामकृष्ण मिशन, रायपुर

ज्ञान का महत्त्व

भारत में कहीं भी जाएँ, आप देखेंगे कि गरीब लोग कड़ी मेहनत कर रहे हैं। शायद यह एकमात्र देश होगा जहाँ वृद्ध महिलाएँ भी मिट्टी खोदने के ठिकानों पर या भवन-निर्माण के कार्यों में सुबह से शाम तक घोर परिश्रम करती दिखाई देती हैं। तथापि, इतनी मिहनत के बावजूद लोग गरीब ही बने रहते हैं। आज भी भारत के ४५% लोग दरिद्रता-रेखा के नीचे अपना जीवन बसर कर रहे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में मिहनत रुपया पैदा नहीं करती है। इसका कारण क्या है ?

भारत में, पूरी जनसंख्या के लगभग ६०% लोग कृषि में संलग्न हैं। ऐसा कह सकते हैं कि सौ लोगों के भोजन की व्यवस्था ६० लोगों को करनी पड़ती है। परन्तु अमेरिका में ६ लोग १०० लोगों के भोजन पैदा करने हेतु पर्याप्त होते हैं। भारत के पास बहुत सी कृषि-योग्य भूमि है, जल तथा अन्य प्राकृतिक सम्पदाएँ भी उपलब्ध हैं, तब भी यहाँ के लोग विश्व के दरिद्रतम लोगों में से एक हैं। यूरोपीय देशों में प्राकृतिक सम्पदा बहुत कम हैं, उस पर शीत ऋतु के कारण बहुत ही सीमित उपज सम्भव होती है और वह भी अल्पकाल के लिए ही। जापान में जमीन की औसतन गहराई मात्र ६ इंच आँकी जाती है। इन राष्ट्रों को आवश्यकता की हर चीज को आयात करना पड़ता है। पाश्चात्य देशों में किसी भी प्रकार का कार्य धन पैदा करता है। ये राष्ट्र किस तरह धनी बने रहते हैं ? इसका एकमात्र उत्तर है : ज्ञान की वजह से—मस्तिष्क की शक्ति के सदुपयोग से। बैलों के समान काम करना ही पर्याप्त नहीं है; काम को ज्ञान के साथ करना चाहिए। केवल तभी धन उत्पन्न होगा। छान्दोग्य उपनिषद् कहता है :

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद। नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १.१.१०

—'दो प्रकार के लोग कर्म करते हैं : एक वे जो ज्ञानसहित कर्म करते हैं तथा अन्य वे जो ज्ञानरहित कर्म किए जाते हैं। ज्ञान और अज्ञान के परिणाम भी भिन्न होते हैं। जो कर्म ज्ञान तथा एकाग्रता के साथ किए जाते हैं, केवल वे ही श्रेष्ठ परिणाम उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं।

भारत में एक समय ऐसा था, जब ज्ञान को बहुत महत्व दिया जाता था। एक पूरी जाति को इस ज्ञान को उत्पन्न करने हेतु अलग रखा जाता था। इसीलिए प्राचीन समय में भारत ने श्रेष्ठ संस्कृति का निर्माण किया था। परन्तु शताब्दियों से, मुख्यतः विदेशी आक्रमणों की वजह से, इस ज्ञान के संवर्धन

के विषय में रुचि का ह्रास हुआ है। मध्यकालीन युगों में, जब भारत सुप्तावस्था को प्राप्त हो रहा था, यूरोप जाग्रत हो रहा था। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में यूरोप में जाग्रति की एक लहर छा गई थी। इसके पश्चात ही पुनर्जागरण देखा गया जिसकी पराकाष्ठा चामत्कारिक तकनीकी विकास में देखी गई। छपाई-मशीन, स्टीम-इंजिन, विद्युत-करघा, रेलगाड़ी आदि आविष्कारों पर आविष्कार किये गए। इसी ने औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया जिसके तहत मनुष्य का मशीन के प्रति तथा अपने सहकर्मियों के प्रति दृष्टिकोण में गम्भीर परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। वृहत्तर सामाजिक समझ-बूझ आई; नए-नए सामाजिक एवं राजनैतिक सिद्धान्त बनाए गए। भारत इन परिवर्तनों से अछूता ही रहा। यदि पाश्चात्य-समृद्धि का कारण ज्ञान है, तो भारत की दरिद्रता का मूलभूत कारण अवश्य ही अज्ञान है। सभी पश्चिमी देश हमसे कहीं अधिक आगे बढ़ चुके हैं। उन्हें किस तरह पकड़ा जाए? केवल ज्ञान की वृद्धि करने से ही धन प्राप्त होगा, और धन के अभाव में हम ज्ञान को फैला न सकेंगे।

इस दुर्दम्य चक्रजाल को कैसे तोड़ा जाए? स्वामी विवेकानन्द ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस समस्या का समाधान बताया। उन्होंने कहा कि ऐसे दुर्दम्य चक्रजाल को केवल शिक्षा के द्वारा ही तोड़ा जा सकता है। यह कोई अव्यावहारिक आदर्श की बात नहीं है। स्वामीजी के मस्तिष्क में था कि सर्वव्यापी शिक्षा अभियान शुरू किया जाय, जो सारे देश में व्याप्त हो जाय। इस अभियान को समुद्री तूफान की तरह सारे देश में फैला दिया जाए जिसमें हजारों मनुष्यों को प्रशिक्षित किया जाए, विशेषकर ग्रामीण इलाकों में। यदि स्वामीजी की योजना सफल हुई होती तो आज भारत का भाग्य कुछ और ही होता।

विभिन्न प्रकार के ज्ञान में, दो प्रकार के ज्ञान को विशेषतया अपने ग्रामीण भाइयों में फैलाना अनिवार्य है :

(१) धन की वृद्धि करानेवाला ज्ञान,

(२) धन का संचय करानेवाला ज्ञान।

धन-वृद्धि करानेवाला ज्ञान

ज्ञान का मुख्य उद्देश्य स्वत: रोजगार पर आधारित होना चाहिए जिसमें इन तीन मुद्दों का समावेश आवश्यक है : लाभकारी कार्य के अवसर प्राप्त हों, कार्य-दक्षता प्राप्त हो तथा आत्म-विश्वास में वृद्धि हो।

(१) लाभकारी कार्यों में मधुमक्खी-पालन, मत्स्यपालन, डेरीफार्म, चॉक, मोमबत्ती के उद्योग इत्यादि।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आजकल दो प्रकार के नवीन विकास दृष्टिगोचर हुए हैं। एक तो उत्पादन से बदलकर व्यवस्था उपभोक्ता की ओर चली गई है। पन्द्रह साल पहले तक भारत मुख्यत: एक उत्पादक इकाई वाला समाज था। इन्दिरा गाँधी को अनेक धन्यवाद जिनकी प्रेरणाशक्ति की वजह से आज भारत खाद्य-सामग्री में आत्म-निर्भर हो सका है तथा विश्व की औद्योगिक शक्तियों में हमारा १०वाँ स्थान है। परन्तु उसके पश्चात, मध्यम वर्ग की वृद्धि होने के कारण, भारत

अधिकाधिक उपभोक्ता समाज में परिवर्तित हो रहा है। स्वतन्त्रता से पहले, भारत में केवल दो ही मुख्य वर्ग विद्यमान थे : धनी तथा गरीब वर्ग। स्वतन्त्रता के उपरान्त, धनी लोग अधिक धनवान हो गए हैं, तथा लगभग ४५% लोग अब भी दरिद्रता-रेखा के नीचे हैं। आखिर आजाद भारत की उपलब्धि भला क्या है? प्रबल मध्यवर्ग का निर्माण। भारत के मध्यवर्ग की जनसंख्या आज कई यूरोपीय देशों की पूरी जनसंख्या से कहीं अधिक है। आजकल इसी मध्यम वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही, मुख्यत: सभी आर्थिक कार्यकलापों का प्रधान उद्देश्य बनकर रह गया है। वस्त्रोद्योग, द्विचक्रवाहन, साज-शृंगार की वस्तुएं, टेलिविजन, घड़ियाँ आदि के उत्पादन में जो भयंकर होड़-सी लगी है, वही आजकल अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का कारण है। हस्तशिल्प, करघा, कशीदे के कार्य तथा अन्य ग्रामीण कलात्मक वस्तुओं की आजकल पहले से अधिक माँग हो सकती है। परन्तु गुणवत्ता प्रधान तथा उपभोक्ता-केन्द्रित विभिन्नता की आवश्यकता है।

दूसरी प्रगति इलेक्ट्रॉनिक क्रान्ति है। भारत ने यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति को तो खो दिया। परन्तु हम अब इलेक्ट्रॉनिक क्रान्ति को खोने की धृष्टता नहीं कर सकते। आजकल हमारे ग्रामीण इलाकों में भी ट्रान्जिस्टर, टी.वी., टेप-रिकॉर्डर, इलेक्ट्रॉनिक घड़ियाँ तथा अन्य इलेक्ट्रॉनिक चीजें भी आए दिन की वस्तुएँ हो गई हैं। इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं विषयक प्रशिक्षण हमारे ग्रामीण भाइयों को देना चाहिए, जिसमें पम्पसेट तथा ट्रैक्टर मरम्मत आदि भी शामिल हों।

(२) कार्य-दक्षता प्राप्ति :

यह व्यक्तिगत प्रशिक्षणार्थी की अभिरुचियों पर निर्भर करता है।

(३) आत्म-विश्वास :

अपने-आप पर विश्वास रखनेवाले स्वामीजी के सन्देश का प्रचार करना आवश्यक है। मुख्य समस्या यह है कि इन प्रशिक्षणार्थियों के मन में जन्म से नीची जाति के होने की भावना तथा गाँव में बाल्यकाल के प्रतिकूल अनुभवों से उपजी हीन भावनाओं के अवरोधों को दूर करना है।

धन-संचय करानेवाला ज्ञान :

अधिकतर ग्रामीणों को संचय के विषय में कुछ मालूम ही नहीं होता। आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती इलाके में ग्रामीण लोग झींगा की खेती में करीब १५०० रु० से लेकर २००० रु० तक प्रतिमाह कमा लेते हैं। परन्तु वे गरीब के गरीब ही रह जाते हैं, क्योंकि वे संचय करना नहीं जानते। वे अपने कठोर परिश्रम से कमाई पूँजी को शराब पीने, जुआ खेलने तथा अन्य व्यसनों अथवा उत्सव-पर्वों तथा शादी-बारात में विचारहीन ढंग से गँवा देते हैं। ग्रामवासी तथा भारत के गरीब लोग भविष्य के प्रति सजग नहीं होते। उनकी वृत्ति भविष्य की कुछ भी चिन्ता किए बिना वर्तमान में जीने की रहती है। उन्हें धन-संचय तथा अपनी पूँजी का उचित सदुपयोग कराना सिखाना अत्यन्त आवश्यक है।

(प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मठ, चेन्ने, से प्रकाशित होनेवाली आंग्ल मासिकी **वेदान्त केसरी** का दिसम्बर १९९८ अंक के अंग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद है।)

स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान—२

—स्वामी शशांकानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

(गतांक से आगे)

महावीर हनुमान जी और स्वामी विवेकानन्द दोनों ही भगवान शंकर के अवतार हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने दोहावली में वर्णन किया है कि श्री हनुमान जी महाराज तो भगवान रूद्र के अवतार हैं और इसीलिए बंदर का स्वरूप होते हुए भी पूजे जाते हैं। क्योंकि श्रीराम में प्रीति है। जेहि शरीर रति राम सों सो आदरहिं सुजान। रूद्र देह तजि नेह बस वानर भै हनुमान। श्रीराम के प्रेम के कारण ही वे शिव का सुन्दर रूप छोड़कर उनकी नर लीला का आस्वादन लेने वानर रूप धारण कर आए।

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरखा ते सेवक भए, हर तें भे हनुमान॥

भगवान श्रीराम की सेवा का मर्म जानने वाले भगवान शंकर सेवा की सरसता को समझ कर ही परमसेव्य महादेव होते हुए भी दास बनने की इच्छा से हनुमान जी बने।

"शंकर सुवन केसरी नन्दन"

भगवान शंकर ही हनुमान जी बन गए।

कलियुग में पुनः युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव के समय भगवान शंकर स्वामी विवेकानन्द के रूप में आए हैं। पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से माता भुवनेश्वरी देवी ने वाराणसी में भगवान वीरेश्वर के मन्दिर में पूजा होम की व्यवस्था की थी। वे स्वयं भी अधिकांश समय देवाधिदेव महादेव की पूजा-पाठ में व्यतीत करती थीं। एक दिन प्रातःकाल शिव-पूजा के बाद भुवनेश्वरी देवी ध्यान मग्न हो गयीं। दोपहर बीत गया और जब सूर्य पश्चिम की ओर ढलने लगा तब भुवनेश्वरी देवी का वाह्य ज्ञान मानो लुप्त हो गया। भगवान के ध्यान में वे पूर्ण मग्न हो गयी। अधिक रात बीतने पर थकी हुई माता सो गयी। उनके बहुत दिनों की आकांक्षा मानो पूर्ण हुई उन्होंने स्वप्न में देखा - तुषार धवल कर्पूर गौर कैलासपति भगवान शिव सामने खड़े हैं। धीरे-धीरे दृश्य बदल गया। भक्त के विस्मय मुग्ध हृदय को एक अपूव आनन्द से विभोर करते हुए भगवान शिव ने छोटे शिशु का रूप धारण कर माता की गोद में शरण ली। माता भुवनेश्वरी देवी की नींद टूट गयी एवं समय आने पर यह स्वप्न सत्य हुआ। भुवनेश्वरी देवी को पुत्र-प्राप्ति हुई और स्वप्न का स्मरण करते हुए ही उनका नाम रखा गया वीरेश्वर। किन्तु माँ प्यार मे बिले पुकारती थी। नामकरण के समय उनका नाम हुआ नरेन्द्रनाथ। नटखट नरेन्द्र जब ऊधम मचाता और भय, फटकार या धमकी किसी से भी वह न मानता तो माँ 'शिव शिव' कहकर उसके सिर पर जल ढाल देती। बस मन्त्र मुग्ध की तरह नरेन्द्र शान्त हो जाता। नरेन्द्र आशुतोष भगवान शंकर जो थे! जलाभिषेक से ही संतुष्ट हो जाते।

बुद्धिमता माता ने दृढ़ विश्वास होते हुए भी यह बात किसी से न कही थी। एक दिन बालक के ऊधम से तंग आकर उन्होंने कह ही तो डाला। महादेव ने स्वयं न आकर न जाने कहाँ से एक भूत भेज दिया है।

ब्रह्मचर्य जीवन और श्रीसीताराम भक्ति

हनुमान जी महाराज के हृदय में श्रीराम और माता जानकी के प्रति अगाध भक्ति थी। किन्तु विवाह करना उन्हें पसन्द न था वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे और सब स्त्री जाति में माता के दर्शन करते थे।

स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में भी देखा जाता है कि श्रीराम और जानकी जी के प्रति प्रगाढ़ भक्ति थी। और विवाह के प्रति इतना तीव्र वैराग्य था कि क्योंकि श्रीराम ने विवाह किया था इसलिए सीता और रामजी की मूर्ति छत से फेंक कर टुकड़े-टुकड़ कर दी थी और विजयी की तरह छत से उतरे थे। किन्तु बाद में उन्हीं सीता रामजी के अवतार श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा के प्रति दासत्व स्वीकार किया था।

श्रीराम और हनुमानजी की पहली भेंट

रावण के द्वारा माता जानकी जी का हरण होने के पश्चात बनवासी राम और भाई लक्ष्मण विरही की भाँति माता जानकी को खोज रहे थे। किन्तु प्रकृत रूप से देखा जाए तो वे तो उनको खोज रहे थे जो उनकी युग लीला में सहायक होकर पृथ्वी पर आए थे।

ब्रह्माजी ने सब देवताओं को वानरों का शरीर धारण कर पृथ्वी पर जाने और प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा करने का आदेश दिया था। केवल देवता ही नहीं ऋषि मुनि भी विभिन्न वेषों में यथा बंदर, भील, वेवट इत्यादि रूप में प्रभु की प्रतीक्षा में थे और भगवान शंकर स्वयं हनुमानजी के रूप में विचरण कर रहे थे। भगवान तो सब कुछ [illegible] थे अतः वे उसी ओर चले जहाँ इन सब से भेंट हो।

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत निअराया॥

इधर कलियुग में भगवान श्रीरामकृष्ण एक साधारण ब्राह्मण वेश में अवतरित हुए समस्त साधनाओं के द्वारा ईश्वरोपलब्धि के बाद वे उनको खोज रहे थे जिन्हे उनकी युग लीला में सहायता करनी थी। यहाँ वे उन्हें कलकत्ता नगरी में खोज रहे थे। वे जानते थे कि उनके चिह्नित भक्तों का आगमन काल उपस्थित हुआ है इसीलिए वे दक्षिणेश्वर की कुटी की छत पर संध्या बेला में रो रोकर कह रहे थे—

कहाँ? तुमलोग कहाँ हो? चले आओ।

श्रीरामावतार के समय जब श्रीराम और भ्राता लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचे तो

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥

सुग्रीवजी को भय हुआ कि ये दोनों इतने बलवान हैं कहीं ऐसा तो नहीं कि बालि के भेजे हुए कोई वीर हो। इसलिए अत्यन्त भयभीत होकर उन्होंने हनुमानजी से कहा —

धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहे सु जानि जियँ सयन बुझाई॥
पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥

यद्यपि सुग्रीव ने हनुमान जी को यह जानने के लिए भेजा था कि वे बालि के भेजे हुए वीर हैं कि नहीं किन्तु हनुमान जी तो यह देखने गए थे कि जिन प्रभु के आगमन की वे प्रतीक्षा कर रहे हैं ये वही हैं कि नहीं !

इधर श्री रामकृष्णावतार के समय नरेन्द्रनाथ उस युगावतार की खोज में बैठे थे जिनके आगमन की उन्हें प्रतीक्षा थी, जो इस पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करने के लिए आए हैं, जिनके पास ईश्वरानुभूति का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा और उसके बल पर वे इस पृथ्वी से नास्तिकता, धर्म सम्बन्धी संशयों को विलीन कर देंगे।

इसी समय नरेन्द्रनाथ के पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ मित्र ने उन्हें अपने घर आए हुए परमहंस देव को भजन सुनाने के लिए आमंत्रित किया। वे गए तो भजन सुनाने पर वास्तव में यह उनकी खोज में सहायक हुआ।

उधर हनुमानजी ने ब्राह्मण का वेष बनाया जिससे भगवान उनको अपना प्रकृत रूप दिखा दें क्योंकि ब्राह्मण से कोई दुराव नहीं करता है।

इधर नरेन्द्रनाथ जिज्ञासु के रूप में उपस्थित हुए क्योंकि कोई भी विज्ञानी गुरु जिज्ञासु से दुराव नहीं करता। उसे तत्त्वज्ञान पूर्णरूप से देता है।

भगवान राम ने कौतूहल से ब्राह्मण के लक्षणों को पहचानने की चेष्टा की—

विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

श्रीराम ने सोचा, "अरे ! हमें क्षत्रिय रूप में देखकर भी ब्राह्मण होते हुए भी इसने सिर झुकाया और फिर भयातुर है अर्थात् यह ब्राह्मण तो है नहीं।" अतः भगवान ने ब्राह्मण रूप देखकर भी उन्हें प्रणाम नहीं किया। अनजाने से खड़े देखते रहे कि वह क्या करता है।

इधर श्रीरामकृष्ण देव ने भी नरेन्द्रनाथ का गाना सुनने के बाद उसके पास आकर उसके अंगों को अच्छी तरह जाँचते हुए उससे दो एक बातें की और सोचा कि देखने में तो यह बड़ा आधुनिक और ठाट-बाट वाला लगता है पर भीतर तो सत्त्व का बहुत बड़ा आधार है। अतः शीघ्र ही एक दिन दक्षिणश्वर आने के लिए कह कर देखने लगे कि क्या करता है।

इधर हनुमानजी महाराज ने अपनी खोज शुरू की। उन्होंने सोचा क्या ये साधारण क्षत्रिय है ? इसलिए श्रीराम से पूछा—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्रीरूप फिरहु बन बीरा॥

आप सांवले और गोरे दोनों कौन हैं जो वन में मुनियों का वेष धारण किए विचर रहे हैं। किन्तु आप देखने में क्षत्रिय मालूम पड़ते हैं।

श्रीराम चुप रहे। तब हनुमानजी महाराज ने सोचा कि क्या ये दोनों सुन्दर और मनोहर रूपधारी कोई राजा या देवता है? यदि ऐसा है तो किस कारण वनों के दुःख कष्ट झेलते हुए फिर रहे हैं। कोमल चरणों से कठिन भूमि पर विचरण कर रहे हैं।

कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु वन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह वन आतप बाता॥

श्रीराम फिर भी चुप रहे। तो हनुमानजी महाराज ने सोचा कि क्या ये ब्रह्मा विष्णु महेश्वर में से कोई हैं या नर-नारायण ऋषि हैं?

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर-नारायण कि तुम्ह दोऊ॥

श्रीराम की चुप्पी देखकर हनुमान जी के मन में संदेह हुआ, तब क्या ये मेरे प्रभु ही हैं?

जग कारण तारन भव भजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥

तो क्या आप सारे विश्व ब्रह्माण्ड के स्वामी पृथ्वी का भार हरण करने, भव बन्धन से तारण करने वाले जगत के कारण परमात्मा ही है?

भगवान राम की खामोशी ने हनुमान जी को मुह्यमान सा कर दिया और उन्हें पूर्व स्मृति प्राप्त हुई कि जब गौ का रूप धारण कर पृथ्वी, देवतागण, ब्रह्मा जी असहाय और भयभीत होकर भगवान की स्तुति कर रहे थे तो आकाशवाणी हुई थी।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहऊँ नर वेषा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥
तिन्हे के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

पृथ्वी, मुनिगण, सिद्धगण, देवताओं के हित के लिए और कष्यप अदिति को दिए वर को पूरा करने के लिए भगवान ने यह वचन दिया था कि मैं कौसलपुरी अयोध्या में राजा दसरथ और कौसल्या के घर में मनुष्य रूप में अवतरित होऊँगा। ऐसा सोचते-सोचते जब हनुमान जी प्रकृतस्थ हुए तो उन्होंने सुना, भगवान राम कह रहे थे—

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु वचन मानि बन आए॥
नाम राम लक्षमन दोऊ भाई। संगनारि सुकुमारि सहाई॥
इहाँ हरी निसिचर वैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
नारद वचन सत्य सब करिहउँ। परम शक्ति समेत अवतरिहउँ॥

हम तो अयोध्या नरेश दसरथजी के पुत्र हैं, पिता के वचन को पूरा करने के लिए वन में आए हैं। हम दोनों भाइयों का नाम राम और लक्ष्मण है। हमारे साथ मेरी पत्नी वैदेही भी आयी हैं जिन्हें

निशाचरों ने चुरा लिया है। हम उसे खोजते फिर रहे हैं। अगर यह पूछो कि नारी को साथ में क्यों लाए तो हमें नारद के वचनों को सत्य करना है। इसलिए अपनी परम शक्ति को भी साथ लाया हूँ। नारद जी के शाप की बात सुनाकर श्रीराम ने यह संकेत किया नारद का शाप सत्य करने के लिए केवल मैं ही अकेला नहीं आया हूँ। हे हनुमान तुम भी आए हो क्योंकि नारद जी के वचन है—

कपि आकृति तुम्ह कीन्ह हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥

अत: मैं जानता हूँ कि तुम ब्राह्मण नहीं हो तुम तो मेरे कार्य के लिए आए हुए हनुमान हो। फिर भी श्रीराम चाहते थे कि हनुमान जी अपने मुख से कहें कि वे कौन है अतः उन्होंने कहा--

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई ॥

हनुमान जी ने देखा अब तो सब पोल खुल गयी तो चरणों में गिर पड़े।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर वेष के रचना ॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही ॥

अपने प्रभु को पहचान कर ब्राह्मण वेषधारी हनुमानजी उनके चरणों में लिपट गए। भगवान शंकर कहते हैं कि हे उमा! प्रभु के चरणों में जो सुख मिला उसका वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता। भगवान का ऐसा मनोहर रूप देखकर शरीर पुलकित हो गया मुख से वचन नहीं निकल रहे थे। फिर धैर्य धर कर स्तुति की। अपने स्वामी को पहचानने का अत्यन्त हर्ष हो रहा था। हे भगवान शंकर, हनुमान जी के हर्ष को आपने इतनी गहनता से कैसे अनुभव किया ? यह प्रश्न तो उठता ही है। क्यों न हो ? भगवान शंकर ही तो हनुमानजी के रूप में यह अनुभव कर रहे थे। वेष बदलकर प्रभु की परीक्षा लेने की धृष्टता के लिए लज्जित होते हुए उन्होंने कहा—

मोर न्याउ मैं पूछा साई। तुम्ह पूछहु कस नर की नाई ॥
तब माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहि प्रभु पहिचाना ॥

हनुमान जी ने पूछा, प्रभो ! मैं तो माया के वश में होकर आप को न पहचान सका किन्तु आप तो मायाधीश हैं, फिर साधारण मनुष्य की भाँति मुझसे मेरे बारे में क्यों पूछते हैं ? किन्तु भगवान राम अब भी चुप थे क्योंकि अभी हनुमान जी ब्राह्मण वेष में ही थे। भगवान राम को कपट नहीं भाता। उन्हें तो वे प्रिय हैं जिनका निर्मल मन हो।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

हनुमान जी ने सोचा अब तो प्रभु सब जान ही गए हैं और मेरा भी ब्राह्मण वेष धरने का प्रयोजन नहीं तो अपना वेष छोड़कर चरणों में गिरे पड़े।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

अपने चरणों में पड़े हनुमान जी को भगवान श्रीराम ने क्या किया ?

"तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥"

उन्हें उठाकर हृदय से लगाया और प्रेमाश्रुओं से हनुमान जी को भिगो दिया।

इधर स्वामीजो के दक्षिणेश्वर में प्रथम आगमन का स्मरण करें। श्री रामकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से कहा, "प्रथम आगमन में ही मैंने देखा, अपने शरीर का उसे कुछ ध्यान ही नहीं है। सिर के केश और वेषभूषा पर उसे कुछ ध्यान नहीं है। बाहर के किसी पदार्थ पर उसका ख्याल नहीं है।

आंखें देखकर ऐसा लगा मानो उसके मन को किसी ने जबरदस्ती अन्तर्मुख बना दिया है। प्रतीत हुआ विषयी लोगों के निवास स्थल कलकत्ते में क्या इतना बड़ा सत्वगुणी आधार रहना असंभव है? नरेन्द्रनाथ का तुफानी मन सत्य की खोज में लगा था। कहाँ मिलेंगे उसके उत्तर देने के लिए युगावतार। नरेन्द्रनाथ ने पहली भेंट में ही श्री रामकृष्ण को पहचानने की चेष्टा की। सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ हुई पहली भेंट में नरेन्द्रनाथ ने उनमें कोई विशेषत्व नहीं देखा। "ये तो एक साधारण साधु हैं।"

कुछ दिनों पश्चात रामचन्द्र दत्त ने जब उन्हें परामर्श दिया—"यदि वास्तव में सत्य को प्राप्ति ही तुम्हारा उद्देश्य है तो ब्रह्म समाज आदि स्थानों में न भटककर दक्षिण में परमहंस देव के पास चले जाओ।" नरेन्द्रनाथ वहाँ गए श्रीरामकृष्ण को गाना सुनाया और फिर उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र का हाथ पकड़ कर बरामदे में खींच ले गए और कहने लगे "तू इतने दिनों के बाद आया? मैं तेरे लिए किस प्रकार प्रतीक्षा कर रहा था, तू सोच भी नहीं सकता। व्यर्थ के प्रसंग सुनते-सुनते मेरे कान जले जा रहे है, मन की बात किसी से न कर सकने के कारण मेरा पेट फूलता जा रहा है।" स्वामीजो ने स्वयं बाद में अपने मुख से बताया कि श्रीरामकृष्ण ने उस समय उनसे कहा—

"मैं जानता हूँ प्रभु, आप वही पुरातन ऋषि नर रूपी नारायण हैं। जीवों की दुर्गति दूर करने के लिए आप पुनः संसार में अवतीर्ण हुए हैं। और फिर मिठाई मक्खन, मिश्री आदि लाकर मुझे खिलाई। फिर हाथ जोड़कर कहने लगे—मैं जानता हूँ, तुम सप्तऋषि मण्डल के ऋषि हो नररूपी नारायण हो, जोवों के कल्याण की कामना से तुमने देह धारण की है इत्यादि।" नरेन्द्रनाथ ने सोचा यह कैसा उन्माद या पागलपन है। मै तो विश्वनाथ दत्त का पुत्र हूँ, यह क्या अनर्गल बक रहे हैं। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने समाधि अवस्था में ऐसा ही देखा था। इस भेंट के बाद भी नरेन्द्र बहुत बार आए। नरेन्द्र के प्रति श्रीरामकृष्ण की व्याकुलता, निष्काम प्रेम आदि के कारण श्रीरामकृष्ण उनके पास एक रहस्य बने रहे।

क्या ये त्यागी सरल उदार प्रेमी पुरुष विकृत मस्तिष्क है? वे क्या हैं? कौन हैं वे?

कई वार नरेन्द्र ने आकर देखा बहुत से जिज्ञासु आकर उनकी बातें सुनकर अपने मन को तृप्त कर रहे हैं। अन्य धर्म प्रचारकों की भाँति श्रीरामकृष्ण कल्पना या रूपक का सहारा लेकर व्याख्यान नहीं करते यथार्थ में सब कुछ छोड़कर पूरे मन से ईश्वर को पुकारकर जो कुछ प्रत्यक्ष किया वह ही कह रहे हैं। अब नरेन्द्रनाथ ने यह स्वीकार किया कि वे मानव की श्रद्धा-पूजा पाने के यथार्थ अधिकारी है। अब नरेन्द्रनाथ को श्रीरामकृष्ण के प्रति यह भावना हुई कि वे अनुभवी धर्म-प्रचारक

सिद्ध पुरुष हैं। दक्षिणेश्वर में तृतीय बार जब नरेन्द्रनाथ गए तो श्रीरामकृष्ण देव उन्हें यदुमल्लिक के बगीचे में ले गये। वहाँ श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ होकर स्थिर भाव से उन्हें देखते रहे और आगे बढ़कर उनका स्पर्श कर दिया। यद्यपि नरेन्द्रनाथ खूब सावधान थे तब भी स्पर्श से वे अभिभूत हो गए उस अवस्था में श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कई प्रश्न किए थे। वह कौन है ? कहाँ से आया है ? क्यों आया है ? कितने दिनों तक यहाँ रहेगा इत्यादि। नरेन्द्र ने जाना कि इस दैवीशक्ति के सामने अपने मन और बुद्धि की शक्ति कितनी तुच्छ है। वे इच्छा मात्र से उनके जैसे मनुष्य के मन को उच्चपथ पर चालित कर सकते हैं। उनके जैसे महापुरुष की कृपा का पात्र होना सौभाग्य की बात है। अब नरेन्द्र ने अनुभव किया कि श्रीरामकृष्ण देव अलौकिक दैवी-शक्ति सम्पन्न महापुरुष हैं। तूफानों और झंझाओं से जूझते हुए नरेन्द्रनाथ के मन में आँधी उठी हुई थी क्या है कोई जिसने ईश्वर को देखा है ? यही प्रश्न उन्होंने श्रीरामकृष्ण के समक्ष रखा। श्रीरामकृष्ण ने कहा "हाँ मैंने ईश्वर को देखा है जैसे तुझको देखता हूँ। नहीं, इससे भी स्पष्ट देखता हूँ। मैं उससे बातें भी करता हूँ और यदि तू चाहे तो तुझे दिखा भी सकता हूँ।"

□

(क्रमशः अगले अंक में)

विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

संरक्षक-सूची

संरक्षक का नाम	स्थान	रुपये
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,९९०/-
२. श्री नन्द लाल टांटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-

केवलाद्वैती श्रीमत् आद्य शंकराचार्य

—श्री राजाभाऊ लिमये
पुणे (महाराष्ट्र)

श्रुतिस्मृति पुराणानाम् आलयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ॥

भाग्यवशात् भारतवर्ष में महापुरुषों की दिव्य परंपरा आजतक अखण्ड रूप से चलती आयी है। उनमें जिन्हें युग प्रवर्तक कहा जा सकता है वे हैं—प्राचीन युग में महर्षि वेदव्यास, मध्य युग में आद्य शंकराचार्य और आर्वाचीन युग में स्वामी विवेकानन्द। इन त्रिमूर्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना एक अत्यंत उद्‌बोधक विषय होगा, लेकिन आज हम केवल श्रीमत् आद्य शंकराचार्य के चरित्र, ग्रंथ और उनका अलौकिक युगप्रवर्तत्व इस दृष्टि से विचार करने वाले हैं।

पृष्ठभूमि—

जिस युग में शंकराचार्य का जन्म हुआ उस कालका वर्णन एक ही शब्द में करना हो तो वह है 'धार्मिक अराजक'। वैदिक धर्म विरोधी चार्वाक, जैन और बौद्ध ये तीन धर्म पंथ अपने अपने क्रमशः भोगवाद, निरीश्वरवाद तथा शून्यवाद इन तत्त्व-प्रणालियों का जी-जान से प्रचार कर रहे थे। वैदिक धर्म में भी शैव, शाक्त, गाणपत्य, कापालिक मीमांसक आदि अनेक पंथ और संप्रदाय स्वयं के संकुचित मतप्रवाह आग्रहपूर्वक समाज के सामने प्रस्तुत कर ही रहे थे। चारों ओर मतमतांतर का कोलाहल मचा हुआ था। परमत खण्डन और स्वमत मण्डन के लिये सर्वत्र वाग्‌युद्ध शुरू था। परिणामस्वरूप संकुचितता, दुराग्रह, सांप्रदायिकता वैचारिक अस्थिरता और आचार में अधःपतन का आक्रोश सर्वत्र सुनाई दे रहा था। तंत्र मार्ग का प्रभाव अत्याधिक हो जाने के कारण पंचमकारों से निर्मित भोगवाद की साधना के प्रबल प्रवाह के कारण सामाजिक जीवन दूषित बन गया था। सामान्य लोग सारे क्षेत्रों में धर्मभ्रष्ट तथा कर्म-भ्रष्ट बन गये थे। वैदिक धर्म और वर्णाश्रम व्यवस्था प्रायः लुप्त हो चुकी थी और अपनी सुविधा के अनुसार वेदवाक्यों की खींचातानी करके अर्थ निकाला जा रहा था। सारा समाज हतबुद्ध तथा किंकर्तव्य-विमूढ़ बन गया था। आम जनता को सत्य धर्म तथा धर्म के सत्य स्वरूप के संबंध में मार्ग दर्शन की आवश्यकता थी। भारत का प्राचीन और उज्ज्वल दर्शन-तत्त्व ज्ञान पूर्णरूपेण अस्तगत हो गया था। निर्जीव कर्मकाण्ड और भ्रष्ट आचार-विचार इतना ही धर्म का शोचनीय स्वरूप शेष रहा था। समाज का सांस्कृतिक स्वरूप एकदम अस्त-व्यस्त हो गया था। धर्म के आमूलाग्र परिवर्तन के लिये किसी समर्थ, प्रज्ञावान, असामान्य कर्तृत्ववान वाक्‌पटु, पण्डित, कुशल संघटक, वैराग्यपूर्ण तपस्वी, साक्षात्कारी महामानव के अवतीर्ण होने की आवश्यकता थी, यह समय की, परिस्थिति की माँग थी। आदि शंकराचार्य के आगमन से वह पूर्ण हुई।

चरित्र—

आचार्य का वाङ्मय इतनी अत्यधिक मात्रा

में उपलब्ध है लेकिन उसमें उन्होंने स्वयं के संबंध में कहीं कोई एकाध पंक्ति भी नहीं लिखी है। उनके समकालीन किसी ने या उनके शिष्यों में से किसी ने उनका कोई चरित्र नहीं लिखा। बहुत समय के पश्चात् लिखे गये दो चरित्र उपलब्ध हैं—एक है माधवाचार्य या विद्याख्यजी का 'शंकर दिग्विजय' और दूसरा आनन्दगिरि जी का 'शंकर विजय'। लेकिन इन दोनों चरित्रों में इतिहास और आख्यायिका, चमत्कार और तात्विक चर्चा, अत्युक्ति और गूढ़ता का गोलगाल हुआ है ऐसा लगता है। उनके जन्म से लेकर निर्माण तक अनेक घटनाओं के संबंध में मतभेद पाये जाते हैं। मतैक्यता का अभाव ही अधिकतर दिखाई देता है। फिर भी इन सब बातों को छोड़कर जो निर्विवाद घटनाएँ बचती हैं उन्हें हमें साररूप में देखना हैं।

जन्म-बाल्य-विद्याभ्यास—

शंकराचार्य जी के जन्मकाल के संबंध में अत्यधिक मतभेद हैं। ईसा पूर्व चौथी शताब्दि से लेकर आठवीं शताब्दि तक, याने बारह सौ वर्षों का यह प्रदीर्घ काल खण्ड इसमें समाविष्ट है। फिर भी आचार्य शंकरजी का जन्म सात सौ अट्ठासी ईसवी में वैशाख शुक्ल पंचमी को केरल प्रान्त में नंबुद्री ब्राह्मण के घर हुआ यह सर्वमान्य मत है। माँ का नाम आर्याम्बा और पिता का नाम शिव गुरु था। उस कुल में चारित्र्य संपन्नता, विद्वत्ता, अध्ययन और अध्यापन इन बातों की उच्चतम परंपरा थी। भगवान शिवजी को तीव्र आराधना के फलस्वरूप प्राप्त हुए इस पुत्र का नाम शंकर रखा गया। तीन वर्ष की बाल आयु में ही शंकर की बुद्धि की तेजस्विता दिखाई देने लगी। दुर्भाग्यवश जब वे चार वर्ष के थे तभी उनके पिता की मृत्यु हुई। सारी जिम्मेदारी माता आर्याम्बा पर आ पड़ी। पाँचवें वर्ष शंकर का उप नयन हुआ और विद्याध्ययन प्रारंभ हुआ।

अष्टवर्षे चतुर्वेदान् द्वादशं सर्वशास्त्रकृत्।
षोडषे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

इस श्लोक में वर्णित इस असामान्य बुद्धि के दिव्य बालक ने आठ वर्ष की आयु में वेदाध्ययन पूर्ण किया, बारह वर्ष की आयु में सब शास्त्रों का अध्ययन समाप्त किया और सोलह वर्ष की छोटी-सी उम्र में ही भाष्य ग्रंथों की रचना शुरू की जो ग्रंथ सारे विश्व में अद्वितीय माने जाते हैं।

श्री गुरु की खोज में—

अपने ही जन्म ग्राम में अपने बेटे ने छोटी उम्र में विद्वान, पंडित, प्रवचनकार आदि सभी रूपों में ख्याति प्राप्त की है यह देखकर अन्य माताओं की तरह आर्याम्बाभी अपने बटे के हाथ पीले कर देने के सपने देखने लगी। लेकिन इस लोकविलक्षण बालक के मन में कुछ अन्य विचार चल रहे थे। संन्यास और धर्मस्थापना इन दो पहियों पर जीवनरथ चलाने का ध्यास उस छोटे से बालक के मन ने लिया था। 'माँ मेरा पाँव घड़ियाल ने पकड़ लिया है, यदि आप मुझे संन्यास लेने की अनुमति देगीं तो ही मैं बच पाऊँगा यह उनका माता के साथ हुआ संवाद सर्वश्रुत है। यह सत्य कथा है या आख्यायिका है यह वे ही जानें लेकिन माँ ने दो शर्तों पर अपने लाडले बेटे को संन्यास लेने की अनुमति दी। एक शर्त यह थी कि माँ के स्मरण करते ही वे उनसे मिलने उपस्थित हो जाएँगे और दूसरी शर्त के अनुसार माँ का अंतिम संस्कार वे स्वयं करेंगे। इन दो बातों का आश्वासन मिलने पर उस धीरोदात्त माँ ने भारी मन से अपने प्राण प्रिय बेटे को गृह त्याग की और गुरुवरण की अनुज्ञा दी। बाल शंकर बारह वर्ष की छोटी उम्र में

केरल प्रान्त से पैदल निकले और बिहड़ वन, विस्तीर्ण मैदान, पर्वत, नदियाँ पार करते हुए नर्मदा तट पर स्थित ओंकारमांधाता के पास वास्तव्य करने वाले भगवत् गोविंद पूज्यवाद के जो उनके गुरु बने—निकट उपस्थित हुए। गोविंद पूज्यवाद महान योगी तो थे ही साथ-साथ उन्हें पतंजलि मुनि का अवतार माना जाता था। वे गौड़पादाचार्य के शिष्य थे। यह आचार्य परंपरा अति प्राचीन और दिव्य है। स्वयं नारायण —ब्रह्मदेव—वसिष्ठ—शक्ति—पराशर—व्यास—शुकाचार्य—गौड़पाद-गोविंदपाद यह वह अलौकिक परंपरा है। असामान्य गुरुदेव ने अपने अलौकिक शिष्य की सुप्त शक्ति का प्रथम कटाक्ष में ही अनुभव किया और आनेवाले युग में धर्म संस्थापना का महान कार्य यही कर पायेगा इस विश्वास से उन्होंने उसका स्वागत किया। उसे तीन साल अपने पास रखा और अद्वैत वेदान्त तत्त्वज्ञान में परिपूर्ण बना दिया। विधिवत् संन्यास दीक्षा दी। शिष्य के परिपूर्ण होने पर उसे आदेश दिया कि ग्रंथरचना करके उसका प्रचार, प्रसार करके धर्म की पुनर्संस्थापना की जाय। गुरुदेव के आदेश के अनुसार संन्यासी शंकर सर्वप्रथम ज्ञानपीठ वाराणसी क्षेत्र में पहुँचे। यहाँ ही संन्यासी बाल-शंकर शंकराचार्य बने। गुरुदेव के आशीर्वाद से और आत्मविश्वास से वेदान्त पाठ और स्तोत्र-रचना का प्रारंभ किया और यहीं उन्हें विद्वत् मान्यता मिली, शिष्य विस्तार भी यहीं पर हुआ। सामान्यतः यह माना जाता है कि उन्हें शिवजी के जो चाण्डाल के रूप में दर्शन हुए तथा उनका उपदेश प्राप्त हुआ वह भी यहीं और इसी समय हुआ। अन्नपूर्णा स्तोत्र 'काशी पंचक', 'विश्व-नाथाष्टक', 'गंगाष्टक' आदि स्तोत्रों की रचना भी इसी समय हुआ। सनंदन-पक्षपाद इस प्रथम शिष्य की प्राप्ति और स्वीकार ये सारी घटनाएँ यहीं घटित हुई होंगी ऐसा लगता है।

दिग्विजय यात्रा—

श्री शंकराचार्य के ग्रंथों का परिचय पाने पूर्व हमें उनके भारत भ्रमण का आलेख देखना जरूरी है। आचार्य जी काशी से प्रयाग गये। वहाँ उन्हें यह ज्ञान हुआ कि सुविख्यात मीमांसक कुमारिल भट्ट तुषाग्नि में प्रवेश कर प्रायश्चित कर रहे हैं तो वे तुरन्त उनसे मिलने वहाँ पहुँचे। शंकराचार्य ने उन्हें विवाद का आह्वान किया लेकिन कुमारिल जीं ने तुषाग्नि से बाहर आने से इन्कार किया और उनके पट्टशिष्य मण्डन मिश्र के साथ विवाद करने को कहा। उनके कहने के अनुसार आचार्य माहिष्मती नगरी आये और उन्होंने मंडन मिश्र से वादभिक्षा माँगी। विवाद का आह्वान किया। कहा जाता है कि मंडन मिश्र की पत्नी-सरस्वती ने ही परीक्षक का काम किया। आचार्य और मण्डन मिश्र के गले में फूल मालाएँ पहनाई गयीं और यह तय किया गया कि विवाद के समय जिसके गले की माला के फूल मुरझा जाएंगे वह एक तो संन्यासी बनेगा या संन्यास का त्याग करेगा। मण्डन मिश्र विवाहित थे अतः वे हारे तो संन्यासी बनेंगे और आचार्य शंकर संन्यासी थे तो वे घर बसाएँगे। शंकराचार्य का अमरुक राजा के शरीर में प्रवेश—परकाया प्रवेश—उसके द्वारा काम शास्त्र संबंधी ज्ञान प्राप्ति, मण्डन मिश्र की अर्धांगिनी के नाते सरस्वती का विवाद का अधिकार मान्य करना ये सारी घटनाएँ भी इसी समय की होंगी। अंत में इस घनघोर वाग्युद्ध की समाप्ति मण्डन मिश्र के पराभूत होने में तथा आचार्य की विजय में हुई। प्रतिज्ञा के अनुसार मण्डन मिश्र ने संन्यास ग्रहण किया और आचार्य का शिष्यत्व ग्रहण किया। वे ही प्रसिद्ध सुरेशाचार्य हुए।

शंकराचार्य की दिग्विजय यात्रा का सुव्यवस्थित ब्योरा तथा सुनिश्चित क्रम उपलब्ध नहीं

है। कहा जाता है कि वे इस विजय के उपरान्त महाराष्ट्र, आंध्र इन प्रान्तों से गुजरते हुए केरल पहुँचे होंगे। माँ को दिये हुए वचन का पालन करते हुए उसके स्मरण करते ही आचार्य उनके संमुख उपस्थित हुए। अंतकाल में माँ को कृष्णाष्टक सुनाकर प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण के दर्शन कराये। माँ का अंतिम संस्कार घर के आँगन में स्वयं किया। इन सारी घटनाओं की सत्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके अनंतर वे घूमते-घूमते आंध्र, उड़िसा, आसाम, नेपाल, काश्मीर तक पहुँचे थे। श्री शैल्य, जगन्नाथ, पशुपतिनाथ, बद्रीनाथ आदि तीर्थ स्थानों में तांत्रिक और बौद्धों का जो वर्चस्व था वह उन्होंने दूर हटाकर वहाँ के मंदिरों की शुद्धि करके वहाँ भगवान की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा की और पूजा अर्चना, आरती आदि की सुव्यवस्था निर्माण की इसमें कोई संदेह नहीं है! आज भी पशुपतेश्वर और बद्री नारायण के पुजारी नंबुद्री ब्राह्मण होते हैं। हरिद्वार होते हुए वे बद्रीनाथ आये और कहते हैं कि जिस व्यास तीर्थ में रहकर बादरायण व्यास जी ने ब्रह्म सूत्र का निर्माण किया उसी स्थान में वास्तव्य करके आचार्य जी ने ब्रह्म सूत्र का भाष्य लिखा। कहा जाता है कि उस समय साक्षात् महर्षि व्यास जी ने ब्राह्मण वेष में आकर उन्हें ब्रह्म सूत्र की आशंकाएँ पूछी और उनकी परीक्षा ली। उनके उत्तरों से प्रसन्न होकर व्यास जी ने उन्हें दर्शन दिये, आशीर्वाद दिया और उनकी आयु सोलह वर्ष से बढ़ाकर उन पर अनुग्रह किया। वे काश्मीर के सुप्रसिद्ध शारदापीठ पर आरुढ़ हुए लेकिन इस पीठ पर आरुढ़ होने के लिए वाक्पटुता का अजिक्य पत्र प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह अजिक्य पत्र प्राप्त करने पर शारदापीठ का दक्षिण दरवाजा खोल दिया जाता है। इन सब परीक्षाओं से पार होकर वे शारदापीठ पर आरुढ़ हुए। ऐसी यह केरल से काश्मीर काम रूप तक की अखंड भारत की दिग्विजय यात्रा शंकराचार्य जी ने कम-से-कम तीन बार की होगी।

कहा जाता है कि अभिनव गुप्त नाम के एक कापालिक द्वारा आचार्य पर कुछ अभिचार कर्म करने के कारण वे रोगग्रस्त हो गये लेकिन उनके शिष्य पक्षपादाचार्य जी ने मंत्रोपासना के द्वारा ही उसकी शक्ति नष्ट कर दी और उल्टा वही कापालिक रोगग्रस्त हो गया। इसी घटना के बाद शंकराचार्य जी ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया और केवल बत्तीस वर्ष की आयु में ही केदारनाथ में गुहा प्रवेश किया और अपने अलौकिक अवतार कार्य की परिसमाप्ति की, वे ब्रह्मलीन हो गये। वह दिन था ईसवीं आठ सौ बारह की वैशाख शुद्ध एकादशी।

ग्रंथ रचना—

अन्य बातों की तरह उनके प्रमाणित ग्रंथों के बारे में भी मतभेद है। फिर भी यह सौभाग्य की बात है कि उनके प्रमुख ग्रंथों के बारे में प्रायः एकमत है। शंकराचार्य जी ने प्रस्थानत्रयी पर विद्वत्तापूर्ण और विद्वन्मान्य भाष्य लिखा यह तो सर्वश्रुत है ही। प्रस्थान शब्द का अर्थ है 'जाना'। जीवात्मा को परमात्मा तक पहुँचने की मदद करने वाले, ब्रह्म प्राप्ति के लिए सहाय्यभूत होने वाले ये भाष्य हैं। ये भाष्य तीन प्रकार के हैं— श्रुति [उपनिषद्], स्मृति [भगवद् गीता] और सूत्र [ब्रह्म सूत्र]। शंकराचार्य जी ने ईश, कठ, केन आदि प्रमुख दस और श्वेताश्वेतर तथा नृसिंहतापनीय ऐसे बारह उपनिषदों पर, गीता और ब्रह्म सूत्रों पर विस्तृत, तात्विक और जिन्हें मान दण्ड समझा जाय ऐसे अप्रतिम भाष्य लिखे हैं। उनका कालानुक्रम निश्चित करना कठिन बात

है। इसकी भी संभावना कम है कि ये सारे भाष्य एक ही समय और एक ही स्थान पर लिखे गये हों। विद्वानों के मतानुसार तथा लेखन-शैली के स्वरूप को देखकर ऐसा कहना पड़ता है कि गीता-भाष्य सर्वप्रथम तथा ब्रह्म सूत्र भाष्य अंतिम लिखा गया होगा। आचार्य जी ने 'विष्णु सहस्रनाम' और 'सनत्सुजातीय' इन पर भी भाष्य लिखा है ऐसा माना जाता है। शंकराचार्य जी ने जो केवलाद्वैत मत का पुरस्कार किया है वह किसी विशिष्ट एक ग्रंथ से नहीं किया तो इन प्रथम भाष्यों के द्वारा ही उसको विस्तृत रूप से लोगों के सामने उपस्थित किया। प्रस्तुत प्रसिद्ध श्लोक को ही उनके तत्त्व ज्ञान की आधारशिला समझा जाता है—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथ कोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या-असत्य है, जो वही ब्रह्म है अन्य कुछ नहीं है। इन चार सिद्धांतों के आधार पर ही केवलाद्वैत अधिष्ठित है। स्वामी विवेकानन्द अपने भावपूर्ण शब्दों में कहते हैं, 'देखो, सोलह वर्ष की उम्र में ही आचार्य जी ने जो लिखा उसे पढ़कर आधुनिक सभ्य संसार विस्मयचकित हुआ है।' सूत्र भाष्य में प्रयुक्त भाषा के संबंध में प्रसिद्ध टीकाकार वाचस्पति मिश्र जी कहते हैं, 'उनकी भाषा सुप्रसन्न तथा गंभीर और गंगाजलौघ के समान पवित्र है। भाष्य, प्रकरण ग्रंथ और स्तोत्र यह उनकी संस्कृत साहित्य को दी हुई दिव्य, नितांत सुन्दर और अजरामर देन है।

शंकराचार्य के द्वारा प्रतिपादित 'मायावाद' न तो बौद्धों के शून्यवाद का प्रतिबिंब है, न वह उनकी अपनी विचार निर्मिति है। यह मायावाद पुरातन काल से प्रचार में है तथा उसकी जड़ें वेद और उपनिषदों तक पहुँची हुई हैं। यह कहना अधिक योग्य होगा कि यह मायावाद उन्हें गुरु-परंपरा से प्राप्त हुआ होगा क्योंकि उनके परम-गुरुदेव गौडपादाचार्य जी ने माण्डुक्य-कारिका लिखकर इसका सूत्रपात बहुत पहले किया है। आचार्य जी ने अपनी प्रखर बुद्धि की सहायता से मूलग्राही प्रज्ञा का सहारा लेकर और बेजोड़ तर्क प्रणाली का प्रयोग करके उस मायावाद का विस्तृत और बारीकी से प्रतिपादन किया और सुदृढ़ नींव पर उसे प्रतिष्ठित किया। जो मायावाद पहले था ही उसे पुनः प्रतिष्ठित करना यही उनका महत्त्वपूर्ण कार्य है। पूर्व परंपरा का अनुसरण करके ही उन्होंने मायावाद का पुनरुद्धार किया ऐसा कहना ही उचित होगा।

प्रकरण ग्रंथ—

भाष्य के अतिरिक्त शंकराचार्य जी ने—'प्रकरण ग्रंथ' नाम से अनेक छोटी-मोटी रचनाएँ की हैं। उनमें उन्होंने अद्वैत तत्त्व ज्ञान को बड़ी मार्मिकता से और प्रभावी रूप से प्रतिपादित किया है। भाष्य का विषय ही शुद्ध तत्त्व ज्ञान है अतः वह मानो पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के घने जंगल से गुजरता है इसलिये वह तो केवल पंडितों का ही क्षेत्र है। शायद सामान्य सुबुद्ध जिज्ञासू लोगों के लिए उन्होंने जान बूझकर ये लघु प्रकरण लिखे होंगे। इनमें वेदान्त तत्त्व ज्ञान की रचना विविध दृष्टांतों के आधार पर की है। इनमें चर्चा, अनुभूति, उपदेश इन सबका प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। 'विवेक चूड़ामणि', 'अपरोक्षानुभूति', 'उपदेश सहस्री' और 'प्रबोध सुधाकर' ये इन प्रकरण ग्रंथों के नाम हैं।

स्तोत्र—

शंकराचार्य जी के विपुल साहित्य में स्तोत्रों का बड़ा महत्त्व है और उनका वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान है। कुछ लोगों ने इन स्तोत्रों का वर्णन 'पारमार्थिक भाव काव्य—Spiritual Lyrics इन शब्दों में

किया है। ये स्तोत्र वेदान्त पर, भक्ति पर, उपदेश पर, देव स्तुति पर, प्रार्थना पर आदि विविध प्रकार के हैं। अनेक स्तोत्र प्रतिद्ध हैं, लोकप्रिय हैं और लोगों के नित्य-पाठ में भी हैं। 'आनन्द लहरी और सौंदर्य लहरी' ये भगवती त्रिपुरा सुन्दरी की स्तुति पर और वर्णन पर स्तोत्र हैं। उनमें तंत्र रहस्य के भी दर्शन होते हैं। 'दक्षिणा मूर्ति', 'हरिमीड़े', 'हस्तामलक', 'निर्वाणषटक्', 'उपदेश पंचक', 'कौपीन पंचक' आदि स्तोत्र वेदान्त पर हैं। 'चर्पटपंजरी', 'षट्पदी', 'नर्मदाष्टक', 'कृष्णाष्टक', इनमें केवल परमभक्ति के दर्शन होते हैं। स्तोत्रों की विविधता और उसकी भक्ति की तन्मयता बड़ी लुभावना है। आचार्य की स्वयं को भूमिका कट्टर अद्वैतवादी वेदान्ती की थी लेकिन व्यवहारता जनसामान्य की सुविधा के लिए ईश्वर और भक्त इस द्वैती भूमिका का स्वीकार उन्होंने किया. ऐसा दिखाई देता है, नहीं तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो स्वयं अत्युच्च कोटके दार्शनिक हैं, प्रकाण्ड पंडित हैं वे इस प्रकार को अत्यंत सुकोमल, भावमधुर, रससिक्त, भक्ति के स्तोत्र क्योंकर लिखें? शंकराचार्य पर तर्क-कर्कश, शुष्क और कूटलतत्त्व ज्ञान निर्माण करने का आरोप लगाया जाता है लेकिन ये टीकाकार भी इन स्तोत्रों की आर्तता, भावपूर्णता, उत्कटता, शरणागति और नम्रता इन गुणों के आविष्कार की ओर अनदेखी नहीं कर सकते। यह सारा प्रपंच उन्होंने लोकोपदेश और लोकसंग्रह के हेतु ही किया था। इन स्तोत्रों से यह प्रतीत होता है कि आचार्य जी में पांडित्य और कवित्व, तर्क-शीलता और भाव कोमलता, ज्ञान और भक्ति इन परस्पर विरोधी लगने वाले गुणों का कितना सुमधुर संगम था। लालित्य, नादमधुरता, सहजता, आसान समर्पक शब्दों का प्रयोग, सहज सुन्दर सुभाषित को प्रस्तुत करने का कौशल्य, तरल कल्पना शक्ति, सुन्दर सुयोग्य दृष्टांतों का चयन आदि उनकी संस्कृत भाषा की कतपय विशेषताएं बताई जा सकती है। इनके अनेक उदाहरण देने का अनिवार मोह होने पर भी अत्याधिक विस्तार के भय से मन को संयमित करना पड़ रहा है। सत्वयुक्त, सरस और प्रेरक साहित्य पाठक को कितनी ऊंचाई पर ले जा सकता है यह शंकराचार्य का साहित्य मानो एक चमत्कार है।

शिष्य परंपरा—

शंकराचार्य जी की शिष्य परंपरा बहुत बड़ी है। फिर भी उनमें से 'पद्मपादाचार्य', 'सुरेशाचार्य', 'तोटकाचार्य' और 'हस्तामलकाचार्य' इन चार प्रमुख शिष्यों के नाम सर्वश्रुत ही हैं। ये सारे विद्वान, तपोनिष्ठ, आचारनिष्ठ तथा कर्तृत्ववान संन्यासी थे। इसीलिये आचार्य ने अपनी सारी विद्या उन्हें बड़ी उदारता से और तन्मयता से प्रदान की और भारत की चार दिशाओं में चार मठ स्थापित करके उन मठों की सारी जिम्मेवारी एक-एक पर सौंपी। इन मठों की स्थापना करने में शंकराचार्य की दूर दृष्टि तथा सुयोजकता स्पष्ट दिखाई देती है। भारत की चार दिशाओं में स्थित प्रसिद्ध और प्राचीन तीर्थ स्थानों में इन मठों की संस्थापना उन्होंने की। पश्चिम में द्वारका में 'शारदापीठ', उत्तर में हिमालय में 'ज्योतिष्पीठ', पूर्व में जगन्नाथपुरी में 'गोवर्धन पीठ और दक्षिण में शृंगेरी में 'शृंगेरी पीठ' ये चार पीठ हैं। धर्म की दृष्टि से भारत के इस प्रकार चार हिस्से करके उन हिस्सों का धार्मिक नेतृत्व इन मठों को सौंपा गया। वहां क्रमानुसार हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य, पद्मपादाचार्य और सुरेशाचार्य को मठाधिपति के नाते नियुक्त किया गया। द्वारका-पीठ के आधिपत्य में सौराष्ट्र, गुजरात, सिंध और राजस्थान यह पश्चिम भारत, ज्योतिष्मठ के आधिपत्य में उत्तर प्रदेश, पंजाब, काश्मीर यह

उत्तर भारत का हिस्सा, गोवर्धनपीठ के आधिपत्य में आसाम, बंगाल, बिहार और उड़िसा यह पूर्व भारत का हिस्सा तथा शृंगेरीपीठ के आधिपत्य में आंध्र, कर्नाटक, तामिलनाडु और केरल यह दक्षिण भारत का हिस्सा समाविष्ट हुआ। इन चार 'धर्मदुर्गों' द्वारा समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक सुव्यवस्था निर्माण हों, धर्म समस्याओं का स्पष्टीकरण तथा निराकरण हों, लोगों के वर्णाश्रम धर्म के पालन पर नजर रखी जाय और लोगों का मार्ग दर्शन किया जाय इन मूलभूत बातों को मद्देनजर रखकर इन पीठों का निर्माण किया गया था। मठाधिपति ज्ञान, भक्ति, तपस्या, वैराग्य आदि सब गुणों से परिपूर्ण थे। ताकि हेतुपूर्तता आसानी से हों। प्रत्येक पीठ के—केन्द्र के लिए एकेक वेद; एकेक महावाक्य, एक देवता, एक तीर्थ इनका भी आयोजन किया गया था। यतिसंघ की स्थापना व संघटना यह शंकराचार्य का और एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। भारत में संन्यास की संकल्पना अतिप्राचीन है लेकिन संन्यासियों का संघ और उनका कार्य यह संकल्पना नयी है। उन्होंने संन्यासी का 'दशनामी' संन्यासियों में विभाजन किया। तीर्थ, सागर, वन, अरण्य, पर्वत आश्रम, गिरी, पुरी, भारती और सरस्वती ये उनके सर्वमान्य दसनाम हैं। इन विभागों को भी चारों मठों से जुड़ा दिया और उसकी सहायता से भावी संन्यासियों की व्यवस्था की गयी। इस प्रकार आदि शंकराचार्य आधुनिक काल के संन्यासियों के आद्य गुरु माने जाते हैं। उनके इस संयोजन के पीछे कितनी धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकात्मता की दृष्टि थी इसका अनुभव करने पर हमें महत् आश्चर्य होता है।

कार्य और अलौकिकत्व—

प्रारम्भ में कथित अनुसार भारत के धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन में वेदव्यास जी शंकराचार्य का कार्य भी युग प्रवर्तक है। हिन्दू धर्म, सनातन वैदिक धर्म इन्हें विश्व में जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और स्वतः सिद्ध दार्शनिक श्रेष्ठता प्राप्त हुई है उसका सारा श्रेय इस महापुरुष को ही देना पड़ेगा। श्रीमत् शंकराचार्य जी का यदि उस सामाजिक, धार्मिक अवस्था में इस संसार में, भारत में अवतरण न होता तो शायद सारा हिन्दुस्थान बौद्ध धर्म के प्रचंड अवैदिक प्रवाह में घूट-घूटकर नष्ट हो गया होता। वैदिक धर्म का नामोनिशान भी भारत में नहीं रहता। शंकराचार्य जी ने अपनी प्रखर प्रज्ञा, तर्कनिष्ठ युक्तिवाद, प्रकाण्ड पाण्डित्य, प्रखर वैराग्य, तीव्र तपस्या, असामान्य भाषा प्रभुत्व इन गुणों के सहारे जैन-बौद्धादि अवैदिक साम्प्रदायिक पाखण्ड मतवादियों को वाग्युद्ध में पूर्ण रूप से पराभूत करके नष्ट प्रायः कर दिया। साथ-साथ सनातन वैदिक धर्म का पुनरुज्जीवन करके उसे बुद्धि प्रामाण्य और विज्ञान की नींव पर सुप्रतिष्ठित किया। वेद प्रामाण्य और ईश्वर का अस्तित्व इन दोनों की पुनर्स्थापना करके ज्ञान मार्ग की उज्ज्वल परंपरा का प्रारम्भ किया। वैदिक धर्मांतर्गत पंथों-पंथों में एकवाक्यता और समन्वय निर्माण किया। तंत्र मार्ग की शुद्धि करके उसके अंतर्गत अनाचार और भ्रष्टाचार को दूर करके श्री चक्र के विशुद्ध पूजा-विधान को प्रस्थापित किया। अनेक मंदिरों की शुद्धि और जीर्णोद्धार करके पूजा की व्यवस्था की। व्यवहार्य और विधायक सुधार करके धर्म को सुव्यस्थित स्वरूप दिया। तोड़-फोड़ तथा विध्वंस के मार्ग को न अपना कर सबका सुन्दर समन्वय किया। अद्वैत वेदान्त का एक प्रभावी दर्शन निर्माण किया और उसकी पुष्टि के लिए विपुल मात्रा में समर्थ साहित्य की रचना की। दुविधा में पड़े हुए

सामान्य लोगों की रुचि के अनुसार तथा जिस धर्म का आचरण करना सम्भव हो ऐसा मार्ग दर्शन उन्होंने किया। पंचायतन पूजा, पचमहायज्ञ, वर्णाश्रम धर्म का पालन करने की आवश्यकता समझायी। समाज की निष्क्रियता को दूर हटाकर उसे कार्य प्रवण बनाया। अखंड भारत भ्रमण करके, मठ स्थापना तथा यतिसंघ की निर्मिति करके आने वाले समय के लिये इनको एक सुचारु रूप में उपस्थित किया।

शंकराचार्य पर दो गम्भीर आरोप किये जाते हैं कि एक तो वे प्रच्छन्न छुपे हुए—बौद्ध हैं और दूसरा अधिक गम्भीर आरोप यह है कि उन्होंने समाज को अकर्मण्य बनाया। लेकिन इन आरोपों में अंशतः भी तथ्य नहीं है। एक तो बात यह है कि यदि आचार्य का मायावाद बौद्धों का शून्यवाद ही होता तो बौद्ध पंडित उन पर टूट न पड़ते। दूसरा अकर्मण्य बनाने का आरोप तो बिल्कुल खोखला है क्योंकि जिन्होंने अपना सारा जीवन केवल कर्म करते हुए ही बिताया, अखण्ड भारत भ्रमण किया, अत्याधिक ग्रंथ लेखन किया, मठ स्थापना की और जिनको अबाधित शिष्य-परम्परा निर्माण हुई उन्होंने अकर्मण्यवाद की ओर समाज को घसीटा यह कहना हास्यास्पद है।

आदि शंकराचार्य अत्यंत प्रज्ञावान, दार्शनिक, सिद्ध, आचार्य, श्रेष्ठ योगी और उच्च कोटि के साक्षात्कारी संन्यासी थे, अतः उन्हें युग प्रवर्तक महापुरुष कहने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। केवल सोलह वर्षों में उन्होंने यह प्रचण्ड कार्य किया और बत्तीस वर्ष की आयु में ही जीवन समाप्त किया। दक्षिण और उत्तर भारत के सकड़ों विद्वान, पंडित, संत-महात्मा, साधक और सिद्ध, धर्म संस्थापक तथा सुधारकों के भी वे प्रेरणा स्थान हैं। उनके निर्माण को लम्बे बारह सौ साल हो गये फिर भी समाज पर उनका जो अत्याधिक प्रभाव है वह और उनकी श्रेष्ठता आज भी जैसी की वैसी कायम है। इसी में उनका अलौकिकत्व निहित है। अंत में इतना ही कहना उचित है—

ॐ नमः श्री यतिराजाय शंकराचार्य सूरये।
सत्चित् सुख स्वरूपाय स्वामिने तापहारिणे॥

ईश्वर और जीव का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा चुम्बक और लोहे का। तब फिर ईश्वर जीव को आकर्षित क्यों नहीं करते? जिस प्रकार अत्यधिक कीचड़ में लिपटा हुआ लोहा चुम्बक के द्वारा आकर्षित नहीं होता, उसी प्रकार अत्यधिक माया में लिप्त जीव ईश्वर के आकर्षण का अनुभव नहीं करता। किन्तु जिस प्रकार पानी से कीचड़ के धुल जाने पर लोहा चुम्बक की ओर खिचने लगता है उसी प्रकार अविरत प्रार्थना तथा पश्चात्ताप के अश्रुओं द्वारा संसार बन्धन में डालने वाली माया का वह कीचड़ जब धुल जाता है, तो जीव शीघ्र ही ईश्वर की ओर आकर्षित होने लगता है।

श्रीरामकृष्ण देव

युवा मंच

धर्म का बदलता स्वरूप और समाज

—कु० ऋचारश्मि
एम० एस-सी० (वनस्पति शास्त्र)

एक समय ऐसा था जब मानव खानाबदोश जिंदगी बिताता था। उसका एक निश्चित निवास या कोई नियमित जीवन शैली नहीं थी। जैसे-जैसे समय का पहिया घूमता गया विकास का दौर चला और इंसानी जीवन एक लय में बंधता चला गया। धीरे-धीरे सम्बन्ध बनने लगे और समाज का गठन शुरू हुआ। यह समय मुख्य तौर पर मनुष्य के मानसिक विकास का रहा जब उसने एक नये तरीके से जिंदगी जीना आरम्भ किया था। समय के गुज़रने के साथ उसने कानून बनाए जो उसके जंगलीपन पर अंकुश लगाने लगे। समय के साथ शिक्षा ने तर्क और ज्ञान की क्षमता दी, विज्ञान ने एक आरामदेह जिंदगी की व्यवस्था कर दी। फिर भी मानव अभी अधूरापन ही महसूस करता था, उसे तलाश थी शांति की एक आश्वस्तता की एक ऐसे वटवृक्ष की जिसके तले वह चैन पा सकता था, अपने ही अंदर के शत्रुओं से—काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया से।

ऐसे में ही समाज में एक शब्द उभरा "धर्म" जो एक ढाल बनकर आया—निरीह मानव की रक्षा हेतु। लेकिन काल की गति के साथ इसके भी रूप बदलते गये। यही धर्म जो उसकी आध्यात्मिक जागृति का केन्द्र था जब सत्ता बन उसकी आध्यात्मिक सोच और शांति को भंग कर उसकी सुरक्षा को चुनौती देने लगा तो उसका तर्कशास्त्र जाग उठा—कि वह उन पुराने सम्बन्धों को जीवित रखे या फिर विज्ञान के नित्य आविष्कारों को नजर में रखकर मानवीय संघों को महत्व दे।

कुछ लोगों ने इंसानों के बीच बढ़ती विद्वेष-भावना को देख धर्म की निंदा करनी शुरू कर दी। कुछ ने विद्रोह कर उसे जीवन से खारिज कर दिया और कुछ लोगों ने धर्म को और गहरे अपना कर धर्म और सत्ता के सम्बन्धों की विवेचना करनी शुरू कर दी। शताब्दियाँ नित्य नये अनुभवों के साथ गुजरने लगीं। फिर भी पीढ़ियाँ अपने को इस धर्म शब्द से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं करा पाई। धर्म मानव जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका था। जीवन में धर्म के इसी गहरे हस्तक्षेप ने उन लोगों को उकसाया जिनके मन में सत्ता में बने रहने की लालसा थी। धर्म एक विशेष वर्ग की रोटी का साधन भी बन गया। इस धर्म शब्द का जो वास्तविक रूप था उसका पतन होता गया जिस कारण धर्म सत्ता के साथ धन से भी सम्बन्ध बना बैठा। धर्म का संग अब उन बुराइयों के साथ हो चला जिसके साथ पढ़ा लिखा वर्ग अपनी पहचान नहीं बनाना चाहता था। आज भारतवर्ष में भी धर्म के नाम पर विभिन्न साम्प्रदायिक शक्तियाँ अपना पैर जमा रही हैं जिसके कारण धर्म के ठेकेदार और राजनेता सर्व-शक्तिमान बने बैठे हैं और आम आदमी अपनी मुक्ति की राह नहीं खोज पा रहा है। यह स्थिति किसी संक्रामक बीमारी से कम नहीं है, समय रहते इसका उन्मूलन बहुत ही आवश्यक है।

मनुस्मृति में मनुमहाराज कहते हैं कि—

"धारणात् धर्ममित्याहु धर्मो धारयति प्रजा।"

अर्थात् जिसे व्यक्ति और समाज मिलकर धारण करे वही धर्म है और धारण करने योग्य जो ण हैं वे धैर्य क्षमाशीलता शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण,

ज्ञान अर्जन, विद्या विवेकशीलता सत्य, अक्रोध इत्यादि श्रेष्ठ गुण हैं। यही धार्मिक गुणों के लक्षण हैं। आज अधिकांश मनुष्यों में इन गुणों का अभाव दिखता है।

एक तरह से मानवीय मूल्यों का विघटन आज बड़े वेग से हो रहा है। आखिर इसका कारण क्या है? इसका जिम्मेवार कौन है? अगर निष्पक्ष रूप से सोचा जाए तो इस विघटन का जिम्मेवार कोई एक विशेष पीढ़ी नहीं है। यह वर्षों से चले आ रहे क्रमिक ह्रास का परिणाम है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानान्तरित हो रहा है।

अक्सर हम यह दोषारोपण करते हैं कि इसका कारण है पाश्चात्य शैली का अनुकरण। यह बहुत गलत बात है। किसी भी देश का धर्म और दर्शन कुमार्ग पर चलने की शिक्षा नहीं देता। पर हम इस तरह मदांध हो चुके हैं कि अनुकरण भी एक गलत तरीके से कर एक सम्भ्रांत विकसित सभ्यता को भी कलंकित कर रहे हैं।

धर्म के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि—Religion is realisation, Religion is that which turns beast into man and man into God. अर्थात् धर्म अनुभूति है। धर्म वह है जो पशु को मनुष्य और मनुष्य को देवता बना देता है। धर्म की इतनी बड़ी अभिव्यक्ति शायद ही किसी और ने दी हो। स्वामी जी कहते हैं—"धर्म मतवादों की चीज नहीं है हम उसे एक सीमित दायरे तक एक सम्प्रदाय के नाम तक संकुचित नहीं रख सकते।" धर्म का अर्थ. बड़ा ही विस्तृत है। धर्म सिर्फ विश्वास की चीज नहीं वरन् एक अनुभूति है एक परिवर्तन है जो मनुष्य को सही मायने में एक मनुष्य की गरिमा प्रदान करे। धर्म को सत्ता से अलग नहीं किया जा सकता पर धर्म का सत्ता से वहीं तक सरोकार है जहाँ तक धर्म समाज-कल्याण में सहायक सिद्ध हो, न कि धर्म का राजनीतिकरण हो।

स्वामी जी कहते हैं "प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसका जीवन केन्द्र है। उसके जीवन का प्रधान स्वर है। पाश्चात्य देशों में राजनीतिक सत्ता ही उनकी जीवन शक्ति है किंतु भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है। यही राष्ट्रीय जीवन रूपी संगीत का प्रधान स्वर है।

यहाँ धार्मिक जीवन से तात्पर्य है कि हम स्वयं में निष्ठा रखते हुए दूसरों में भी ईश्वरत्व की उपस्थिति की अनुभूति करते हुए एक शक्तिशाली आदर्श राष्ट्र निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दें। जिससे हम एक बार फिर गुलाम होने से बचें। आज हमारे इसी बिखराव का फायदा एक बार फिर से उठाने को कई देश लालायित हैं। धर्म को पुराना कहना, नकार देना या उसका गलत प्रयोग करना बहुत आसान है मगर उससे तर्क और कानून के स्तर पर जूझना बहुत ही कठिन है। अतः स्वामी जी के शब्दों में हमें एक ही महावाणी सुनाई दे रही है—"हमारा धर्म हमें सिखाता है कि संसार के सभी प्राणी हमारी आत्मा के विविध रूप मात्र हैं। निंदा पर्याप्त हो चुकी। दोष दर्शन बहुत हो चुका। अब तो पुनः निर्माण का, फिर से संगठन का समय आ गया है। अब अपनी समग्र बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उनको एक केन्द्र में लाने का और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने का समय आ गया है।

"सो हे आर्य संतान आगे बढ़ो।"

आज हमें स्वामी जी की इन्हीं वाणियों को जीवन में उतार कर अपने को, अपने समाज को और अपने देश को समुन्नत करने की आवश्यकता है।

खालसा पंथ त्रिशताब्दी : १४ अप्रैल

गुरु गोविंद सिंह जी का खालसा सन्देश

—रवीन्द्र कुमार गांधी

आज से तीन सौ वर्ष पहले १६६६ ई० में बैशाखी के दिन श्री केशगढ़ आनन्दपुर साहिब (पंजाब) की धरती पर श्री गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज ने श्री गुरु नानक देव जी महाराज के निर्मल पंथ की सम्पूर्णता करते हुए खालसा पंथ की स्थापना की। जिन्हें पहले सिख कहा जाता था, अब अमृत पान करने के बाद उसको खालसा कहा जाने लगा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—

"खालसा में गुरुजी ने अलौकिक शक्ति संचार किया और उपदेश दिया कि खालसा में ऊँच-नीच कोई नहीं, सब एक स्वरूप है। खालसा का पहला धर्म है कि देश तथा मानव जाति की रक्षा के लिए तन, मन, धन सब कुछ न्योछावर कर दे। निर्धनों, अनाथों तथा असहायों की रक्षा के लिए आगे रहे। सतगुरु ने खालसा सजाकर अमृत प्रचार की एक अनोखी प्रथा चलायी। अमृत प्रचार द्वारा राष्ट्रीय संगठन पैदा किया तथा एक परमात्मा की उपासना का उपदेश दिया। गुरुदेव का यह लोक तांत्रिक नाम संसार के इतिहास में असाधारण तथा अलौकिक है।

श्री गुरु गोविंद सिंह ने खालसा पंथ की रचना करके लोगों में यह विश्वास उत्पन्न किया कि वे लोग एक ईश्वरीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए उत्पन्न हुए है। उन्होंने एक नया जयघोष दिया—वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतेह (खालसा ईश्वर का है और ईश्बर की विजय सुनिश्चित है।)

खालसा पंथ निर्माण दिवस १६६६ को वैशाखी के दिन देश की एकता, अखंडता एवं धर्म निरपेक्षता के लिए पंच प्यारों को अमृत पिलाकर जीवित करने का कार्य गुरु गोविंद सिंह ने किया था। पुनः इन पंच प्यारों से अमृत छक कर गुरु गोविंद राय जी गुरु गोबिंद सिंह बने। संगत ने जयकारा लगाया बोले सो निहाल सत्त श्री अकाल। गुरु गोविंद सिंह ने जयकारा का नारा दिया। वाहिगुरु जी का खालसा वाहि गुरु जी की फतेह (खालसा वाहि गुरु) अर्थात परमात्मा का है तथा जीत परमात्मा की है।

विश्व के इतिहास में इस तरह सिख को जन्म दिया था, उसके पहले स्वरूप गुरु नानक देव ने अब १०वें स्वरूप को जन्म देना था सिंह को जिसे खालसा कहा गया। वह व्यक्ति जो खालिस ईश्वर की ज्योति में लीन हो जाता है, जिसका रूप कृत्रिम नहीं। इस कार्य के लिए उन्होंने प्रथम बैशाख को जिस दिन बहुत पहले से बैशाखी का त्योहार मनाया जाता रहा है निश्चित किया। वह दिन था १३ अप्रैल, १६६६ ई।

परीक्षा आरम्भ हुई। अधिक प्रश्न पूछने की बजाय मुख्य प्रश्न ही सिखों के आगे रखा गया। वह था आत्म ज्ञान का प्रश्न। गुरु नानक साहब ने पहले ही यह समझा दिया था कि मनुष्य का स्वरूप अविनाशी ज्योति का अंश है। वह जगत जीवन के सागर की लहर है यद्यपि उसका रूप बदल जाये तथापि हस्ती नहीं बदलती। अविनाशी प्रभु का रूप प्रतिबिम्ब होने से यह अविनाशी और अमर प्रभु का ही स्वरूप है। मृत्यु उसको समाप्त नहीं कर सकती। वह तो परिवर्तन द्वारा नवजीवन प्रदान करती है। इसी बड़े सवाल का जवाब असली तौर पर मांगा गया। गुरु गोविंद राय

दीवान में खड़े हुए और हाथ में तीक्ष्ण तलवार लेकर गरज कर कहने लगे, मुझे जगत कल्याण के लिए शीश की आवश्यकता है, जो तलवार को आत्मसमर्पण कर सके, सन्नाटा छा गया। फिर बोले कोई आये मैदान में। सद्गुरू का सिंह-नाद सुनकर एक सिख उठा वह लाहौर निवासी तथा पुरातन वर्ण व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय जाति का था। गुरु साहब उसे भुजा से पकड़कर तम्बू में ले गये। लोगों ने अन्दर से खंडे की टंकार की ध्वनि सुनी और लहू की धारा बाहर बहती हुई देखी। गुरु जी फिर दिवान में आये और फरमाया मुझे एक सिर और चाहिए। सुनकर दिल्ली के रहने वाले जाट जाति के धर्म-चन्द्र नामक सज्जन खड़े हुए और उन्होंने अपना शीश भेंट किया। इसके उपरांत क्रमशः द्वारिका का धोबी मुहकम चन्द, जगन्नाथ का कहार हिम्मत राम तथा विदर के भाई साहब चद ने गुरु आज्ञा पालन करते हुए शीशार्पण किया और अमृतपान के बाद में सभी सिंह हो गये।

उस दिन एक बार हजारों नर-नारियों ने अमृतपान किया और क्रमशः सभी सिंह तथा कौर के नामों से आभूषित हुए थे। मानव के इतिहास में यह पहला अवसर है, जब किसी गुरु ने अपने शिष्यों को गुरु कहा। इस प्रकार मर्त्य मानव जाति, कुल, कर्म वर्ण, देश, स्थान और वर्गगत भेद-भावों से विमुक्त होकर गुरुदेव के पावन स्पर्श से अमर्त्य बन गया। मानव का यह पुनर्निर्माणों के इतिहास में सचमुच एक अश्रुत पूर्व घटना है।

संसार के इतिहास में शायद यह पहली घटना थी कि गुरु ने इतना ऊँचा उठकर शिष्यों को अपना गुरु कहा। इससे अनुमान लगता है कि उनकी आंखों में सिख का रूप कितना पवित्र होगा। उनकी आत्मा को कितना महान पाया होगा। स्वयं जिसे लोग भगवान के समान मानते थे वे स्वयं उनके सामने झुक गये। वास्तव में उन्होंने पंच-पंथ लोक सत्ता को महान माना था। संगत को प्रधानता दी थी।

गुरु गोविंद सिंह ने खालसा के आदर्श की ओर संकेत करते हुए कहा कि तुम्हें अपने जीवन को आदर्शमय बनाना है। तुम्हें संतों के समान पवित्र ईश्वर भक्त, उदार तथा अनुरागी बनना है और साथ ही महाबलियों के समान शूरवीर, बलवान और त्यागी भी। वे जो दुर्बल हैं, कमजोर हैं, जिन पर अन्याय होता है, जिनका कोई रक्षक नहीं है, जो दलित और अपमानित हैं, उनकी सहायता करना, रक्षा करना, किसी प्रकार के भय को स्वीकार न करना न किसी को डराना अन्यायी चाहे कितना कठोर है। उसको कठोरता और सख्ती के सामने सिर न झुकाना उससे डरकर भागना नहीं, कायरता का प्रदर्शन तुम्हें शोभा नहीं देगा। इतना ही नहीं उन्होंने बताया कि गरीब, मोहताज, निर्धन अनाथों की सेवा करना अपना कर्तव्य समझना स्वयं भीख न मांगना, दान नहीं लेना, धर्म और आचरण को ऊँचा रखना। मन, वचन, कर्म से अपने आपको ऊँचा और महान साबित करना।

हिन्दू धर्म के रक्षक गुरु तेग बहादुर जी के बलिदान के २३ वर्ष हो चुके थे। उनके सामने जो शर्त रखी गयी थी कि या तो वे चमत्कार दिखायें या इस्लाम काबूल करें या फिर शहीद होने को तैयार हो जायें। उन्होंने शहीद होना कबूल कर लिया था पर चमत्कार जो गुप्त था, खालसा के रूप में प्रकट होकर सामने आ गया। पिता के पावन बलिदान ने जो भावना नौ वर्ष के गुरु गोविंद सिंह में भरी थी वही खालसा के रूप में सामने आ गया था। वह सवा दो सौ साल पहले का शब्द जिसे सिख कहा गया था, सम्पूर्ण रूप में अब खालसा के रूप से सामने आ गया।

रामकृष्ण मिशन, पोर्ट ब्लेयर में कर्म मन्दिर और ज्ञान मन्दिर का उद्घाटन

प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का उद्घाटन का भाषण

[रामकृष्ण मिशन, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान में नव निर्मित ज्ञान मन्दिर (शिक्षण केन्द्र) तथा कर्म मन्दिर (व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र) का औपचारिक उद्घाटन १ जनवरी १९९९ को रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी स्मरणानन्द की उपस्थिति में प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा सम्पन्न हुआ। यहाँ उनके उद्घाटन भाषण का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया जा रहा है। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदार नाथ लाभ]

प्रधान अटल श्री अटल विहारी वाजपेयी, का उद्घाटन भाषण :

आदरणीय स्वामी स्मरणानन्द जी, स्वामी ईशात्मानन्द जी, उप राज्यपाल आई० पी० गुप्ता, संसद में मेरे सहकर्मी श्री मनोरंजन भक्त तथा देवियो और सज्जनो :

सब से पहले मैं आप सबको मंगलमय नव वर्ष की शुभ कामना देता हूँ। यह नया वर्ष हमारे देश के लिए शान्ति और समृद्धिदायक हो। हम सब में एकता हो और हमारा प्यारा भारत वर्ष एक ज्योतिर्मय भविष्य की ओर अग्रसर हो।

हमारे देश में अनेक नव वर्ष होते हैं। विभिन्न समुदाय के लोग वर्ष के विभिन्न कालों में अपना 'नया वर्ष' मनाते हैं। यह हमारी संस्कृति का द्योतक है. भिन्नता का हर्गिज नहीं। आइए, हम सब सर्वशक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना करें : **सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः!** सभी सुखी हों सभी स्वस्थ रहें।

आज का दिन हम सब के लिए बड़े आनन्द का दिन है। इस वर्ष के प्रथम दिन ही रामकृष्ण मिशन ने हमारे देश के इस सुदूर भाग में अपनी धन्यतापूर्ण गतिविधियों का विस्तार किया है। इसने शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का निश्चय किया है। मुझे कर्म मन्दिर और ज्ञान मन्दिर का उद्घाटन करने का अवसर प्रदान किया गया है और इसके लिए मैं मिशन के पदाधिकारियों का कृतज्ञ हूँ।

हमें शिक्षा पर विशेष जोर देना है, शिक्षा के क्षेत्र में हमें प्रचुर प्रगति करनी है। अन्दमान और निकोबार द्वीपों में इसने प्रचुर सुधार किये हैं किन्तु अभी भी अनेक कमियाँ और अनेक बाधाएँ हैं। फिर भी बाधाओं से हमें निराश नहीं होना है, बल्कि हमें उन्हें चुनौतियों के रूप में अंगीकार करना है। उन्हें हमारे पुरुषकार के निमन्त्रण के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द हमें अमृत-पुत्र—अमृतस्य पुत्राः—कहकर सम्बोधित करते हैं। उनकी इच्छा है कि हम अपने आत्म-विश्वास को अभिव्यक्त करें। हम क्यों रोयें? हम अपनी दुर्बलता क्यों प्रदर्शित करें? हम दूसरों पर क्यों निर्भर रहें? हम दूसरों के दान पर क्यों जीवित रहें। किन्तु, वस्तुतः यदि कोई मित्र के रूप में हमारी सहायता करने को तैयार है, तब हम उस सहायता को स्वीकार कर सकते हैं। संसार के सभी लोग एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपने पाँव पर स्वयं खड़े न हों। और अपने पाँव पर खड़े होने के लिए हमें शिक्षित होना होगा, हमें सुसंस्कृत होना पड़ेगा। हमें कठोर परिश्रम करना है, हमें उद्यमी होना है; हमें अपने राष्ट्र को महान बनाने का हर प्रयास करना है—दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

हमारी संस्कृति पाँच हजार वर्ष पुरानी है। हमारे भोजनाचार भिन्न हैं, भाषाएँ भिन्न हैं, जीवन पद्धतियाँ भिन्न हैं, किन्तु तब भी हम एक हैं और हमें अपने देश को एकता और अखंडता के सूत्र में पिरोकर रखना है। हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे विभेदों की सृष्टि हो।

'अनेकता' और 'विभेद' में गहरा अन्तर है। हमें इन दो शब्दों में उलझन नहीं खडी करनी चाहिए। यहीं संस्कृति कार्य करती है। संस्कृति के सम्बन्ध में हमारे अनेक भिन्न-भिन्न विचार हो सकते हैं। किन्तु हमें आपस में झगड़ना नहीं चाहिए। भूख लगने पर भोजन करना हमारी प्रकृति है। बिना भूख के खाना विकृति है। और दूसरों के साथ मिलकर खाना संस्कृति है। इसलिए संस्कृति कभी भी कलह का बीज नहीं हो सकती।

हमें सबको समभाव से देखना चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति दिव्य है। हम में भिन्नताएँ होंगी—कुछ लोग धनी हो सकते हैं, कुछ दरिद्र हो सकते हैं, कुछ लोग सुन्दर हो सकते हैं, कुछ कुरूप हो सकते हैं, कुछ लोग प्रतिभाशील हो सकते हैं. कुछ मानसिक रूप से सुस्त हो सकते हैं: किन्तु तब भी सभी ईश्वर की दृष्टि में समान हैं क्योंकि सभी जीवों में ईश्वर निवास करते हैं। इसी से स्वामी विवेकानन्द ने कहा, 'मानव की सेवा ईश्वर की सेवा है।' यही हमारी संस्कृति है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि शिक्षा सभी बुराइयों की रामबाण दवा है। उन्होंने हमें आत्म-विश्वास का सन्देश दिया। किन्तु यह खेद का विषय है कि स्वाधीनता के पचास वर्षों के पश्चात् भी हम अपने देश से निरक्षरता का उन्मूलन नहीं कर सके। हम सरस्वती पूजा तो बहुत करते हैं परन्तु बच्चों को शिक्षा की व्यवस्था नहीं करते। वास्तविक सरस्वती पूजा यही होगी। हमें आत्म-विश्वास लाना होगा। हमारे देश के पास हमें महान् बनाने की हर वस्तु है। हमारे पड़ोसी देश हमारी ओर देख रहे हैं। उनके प्रति भी हमारे दायित्व हैं। हमारी युवा पीढ़ी को इसे समझना चाहिए और दायित्व ग्रहण करने के लिए आगे आना चाहिए। शिक्षा केवल नौकरी पाने का साधन नहीं है। एक श्रेष्ठतर जीवन, एक श्रेष्ठतर जीवन शैली के लिए शिक्षा की आवश्कता है।

शिक्षा प्रदान करने तथा अन्य सेवाओं के लिए रामकृष्ण मिशन सुविख्यात है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन द्वीपों के युवक और युवतियाँ समुचित शिक्षा, मार्गदर्शन, एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे ताकि वे स्वयं अपने पाँवों पर खड़े हो सकें और देश को प्रगति की ओर ले जा सकें। मैं रामकृष्ण मिशन का, उनके द्वारा की जानेवाली निःस्वार्थ सेवाओं के लिए, आभारी हूँ। रामकृष्ण मिशन देश के प्रत्येक कोने में, सुदूरतम भाग में, सुनसान जगहों में बिना किसी भेदभाव के लोगों की सेवा करता है। हम रामकृष्ण मिशन के समान अधिक-से-अधिक संस्थाओं की अपेक्षा करते हैं जो अपनी सुख सुविधाओं को भूलकर अपने-आप को समर्पित कर सकें, और सेवा कर सकें। केवल तभी हम अपनी मातृभूमि का भाग्य बदल सकते हैं और भारत का पुनर्निमाण कर सकते हैं।

अच्छा, हम राजनीतिज्ञ भी सेवा-कार्य करते हैं, किन्तु हमलोग हमेशा हिसाब लगाते रहते हैं। सभी राजनीतिज्ञ पहले अपने वोटों (मतदानों) के विषय में सोचते हैं बाद में सामाजिक-काय के सम्बन्ध में विचार करते हैं। हमारे सामने अन्य कोई उपाय नहीं है। लोकतन्त्र में वोट राजनीतिज्ञों के लिए परम प्रलोभन की वस्तु है। परन्तु जब मैं रामकृष्ण मिशन की निःस्वार्थ सेवाओं को देखता हूँ—बिना किसी प्रत्याशा के सब की सेवा करते हुए—देखता हूँ, तब मैं नतमस्तक हो जाता हूँ। मैं रामकृष्ण मिशन को बधाई देता हूँ, और स्वामी स्मरणानन्द जी को धन्यवाद देता हूँ जो बेलुड़ मठ से सीधे यहाँ आये हैं।

मुझे आमंत्रित करने तथा आपके समक्ष बोलने का अवसर प्रदान करने के लिए मैं स्वामी ईशात्मानंद जी का कृतज्ञ हूं। आप सबको धन्यवाद।

[१ जनवरी, १९९९ को रामकृष्ण मिशन, पोर्ट ब्लेयर में प्रधान मंत्री श्री अटल विहारी बाजपेयी द्वारा दिये गये भाषण का हिन्दी रूपान्तर। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ।]

समाचार एवं सूचनाएँ

गुजरात में रामकृष्ण मिशन का नयाकेन्द्र

पोरबन्दर, ३० मार्च।

रामकृष्ण मिशन, जिसने अपने उत्कृष्ट मानवीय कार्यकलापों के लिए हाल में गाँधी शान्ति संस्थापन पुरस्कार प्राप्त किया है, गुजरात में अपने क्रियाकलापों का विस्तार कर रहा है। महात्मा गाँधी को जन्मस्थली—पोरबन्दर के जिस भवन में, विश्वधर्म महासभा, शिकागों में भाग लेने के लिए जाने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने १८९१-९२ ई० में चार महीनों से अधिक काल तक निवास किया था, पोरबन्दर के उसी भवन में रामकृष्ण मिशन का एक नया केन्द्र स्थापित किया गया है। वह भवन अब स्वामी विवेकानन्द स्मृति-भवन के रूप में परिवर्तित हो गया है। नि:शुल्क नेत्र-शिविर, चल-चिकित्सालय, पुस्तकालय एवं अन्य राहत कार्यों आदि के रूप में वहाँ अनेक मानवीय कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महासचिव स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज के द्वारा गत १३ मार्च १९९९ को पोरबन्दर में एक विवेकानन्द दातव्य औषधालय (एलोपैथिक, होमियोपैथिक एवं आयुर्वेदिक) का उद्घाटन किया गया। अपने उद्घाटन भाषण में स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने गत दो वर्षों की अवधि में पोरबन्दर केन्द्र के द्वारा की गयी प्रगति पर सन्तोष व्यक्त किया तथा लोगों को इस केन्द्र के विकास के लिए सहयोग एवं सहायता करने के लिए अनुप्रेरित किया। उद्घाटन समारोह में बड़ी संख्या में पोरबन्दर के लब्ध प्रतिष्ठ नागरिकों, डाक्टरों एवं चिकित्सार्थियों ने भाग लिया।

१३ मार्च को ही रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, पोरबन्दर द्वारा एक चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया जिसमें सोरियासिस (छाल रोग) एवं अन्य रोगों की नि:शुल्क चिकित्सा की गयी। इस शिविर में कुल २७ रोगियों का ईलाज किया गया।

२४ मार्च, १९९९ को श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन ने रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, पोरबन्दर के परिसर में पुस्तकालय-सह-प्रार्थना हॉल-सह-व्याख्यान हॉल के प्रस्तावित भवन का शिलान्यास किया। पुस्तकालय एवं प्रार्थना कक्ष सभी समुदाय एवं धर्मों के लोगों के लिए खुले रहेंगे। भवन-निर्माण, उपस्कर एव पुस्तकादि का अनुमानित लागत व्यय ३० लाख रुपये है। २१ मार्च को पोरबन्दर आश्रम-परिसर में आयोजित जनसभा को सम्बोधित करते हुए स्वामी आत्मस्थानन्द जी ने लोगों से इस केन्द्र की विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए सहयोग एवं सहायता करने का अनुरोध किया।

इस आश्रम के सचिव निखिलेश्वरानन्द ने अपने स्वागत भाषण में प्रस्तावित योजनाओं की विस्तृत जानकारी देते हुए कहा कि पुस्तकालय में दर्शन, धर्म, विज्ञान, सामान्य ज्ञान, प्रबन्धन, आत्म-विकास एवं कथा साहित्य आदि की उत्कृष्ट पुस्तकें उपलब्ध की जाएँगी।

शाश्वत सुख-शांति का अजस्र स्रोत अन्तर्मन में

कोरबा (बालकोनगर) 'शाश्वत सुख शांति का अजस्र स्रोत मनुष्य के अन्तर्मन में निहित है, आवश्यकता उससे साक्षात्कार करने की है। यह तभी सम्भव है जब हम मानव जीवन के उद्देश्य का सही विश्लेषण कर उस दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास करें।

उपर्युक्त उद्गार है श्री रामकृष्ण मिशन पोरबन्दर के स्वामी श्री निखिलेश्वरानन्द जी के, जो उन्होंने 'स्ट्रैस मैनेजमेंट' पर एम० टी० आई९ बालको में आयोजित कार्यशाला को सम्बोधित करते हुये व्यक्त किये। इस आयोजन के मुख्य अतिथि थे एस० वार्ष्णेय महाप्रबन्धक (सामग्री) एव विशिष्ट अतिथि थे शहीर अहमद महाप्रबन्धक कार्मिक प्रशासन तथा गोविन्द स्वरूप माथुर, उप महाप्रबन्धक मानव संसाधन विकास एवं प्रबन्धन सेवाएँ।

स्वामी निखिलेश्वरानन्द ने स्ट्रैस मैनेजमेंट पर अपने सारगर्भित उद्बोधन में तानव के कारणों उसके प्रभाव एवं उसे दूर करने के उपायों की विस्तृत मीमांसा करते हुए कहा कि तनाव क्रोध के हस्तांतरण का परिणाम है। कुछ तनावग्रस्त व्यक्ति अपना तनाव दूसरों पर डालते हैं कुछ लोग इसे व्यक्त नहीं करते तथा कुछ लोग न तनाव में जीते हैं न दूसरों को तनाव में रखते हैं। यही जीने का का ढंग है।

स्वामी निखिलेश्वरानन्द ने कहा कि तनाव मुक्ति के लिये प्रत्येक कार्य को प्रभु की सेवा समझ कर निष्काम भाव से करना हाहिए। गीता के कर्मयोग का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि औद्योगिक क्षेत्र में अशांति नहीं होगी यदि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर की दिव्य आत्मा के दर्शन किये जाए। समस्याओं का शांतिपूर्ण विश्लेषण किया जाए और निराकरण किया जाए। कर्म का फल तो स्थिति प्रज्ञ होकर मिलता ही है।

स्वामी निखिलेश्वरानन्द ने स्वामी विवेकानन्द की जीवन धारा एवं वेदान्त दर्शन का उल्लेख करते हुये बताया कि वेदान्त का सन्देश है कि शांति मन के अन्दर है तथा इसका साक्षात्कार ध्यान द्वारा हो सकता है। मनुष्य दुःख में टूट जाता है तथा सुख में डूब जाता है। वस्तुतः उसे निराश और उद्वेलित नहीं होना चाहिये। उसे कर्म फल के सिद्धांत पर विश्वास करते हुये अपनी जीवन दिशा एवं कर्म क्षेत्र का निर्धारण करना चाहिये।

उन्होंने तनाव प्रबन्धन का विस्तृत विश्लेषण करते हुये बताया कि तनाव एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। प्रयास यह होना चाहिये कि तनाव पैदा ही न हो और न हम उसके प्रेरक बने। पाश्चात्य जगत में तनाव प्रबन्धन ने जो सूत्र ढूंढ़े हैं वे भी ध्यान के इर्द-गिर्द केन्द्रित है। नियमित ध्यान करने से तनाब कम हो जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण विश्व में तनाव प्रवन्धन की जो प्रक्रिया है उनका भारतीय-करण होना चाहिये।

स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने ध्यान के सैद्धांतिक फल का विश्लेषण करते हुए कार्यशाला के प्रतिभागियों को ध्यान का अभ्यास कराया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि एल० सी० वार्ष्णेय, महाप्रवन्धक (पदार्थ) ने कहा कि जीवन को सही दिशा निर्देश देने के लिये ही महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता है वे अपने ज्ञान और अनुभव से पूरे विश्व की सेवा करते हैं।

स्वामी जी का संक्षिप्त परिचय जी० एस० माथुर उ० म० प्र० (मासंवि एवं प्रसे) ने दिया अतिथियों का स्वागत जे० पी० मार्कण्डे उ० प्र० (मासवि) ने किया। कार्यक्रम का कुशल संचालन श्रीमती जे० स्वर्णकार ने किया।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण सस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी. १४-८३

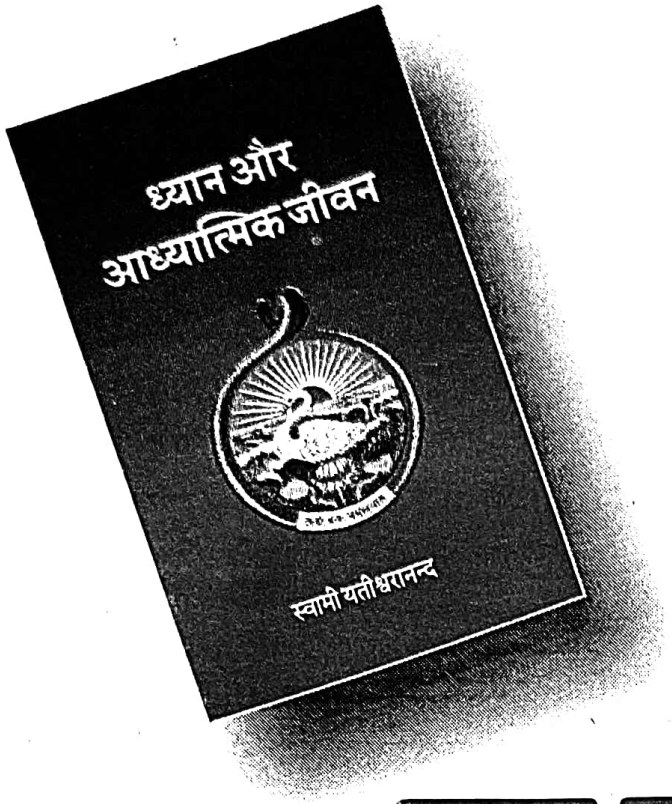

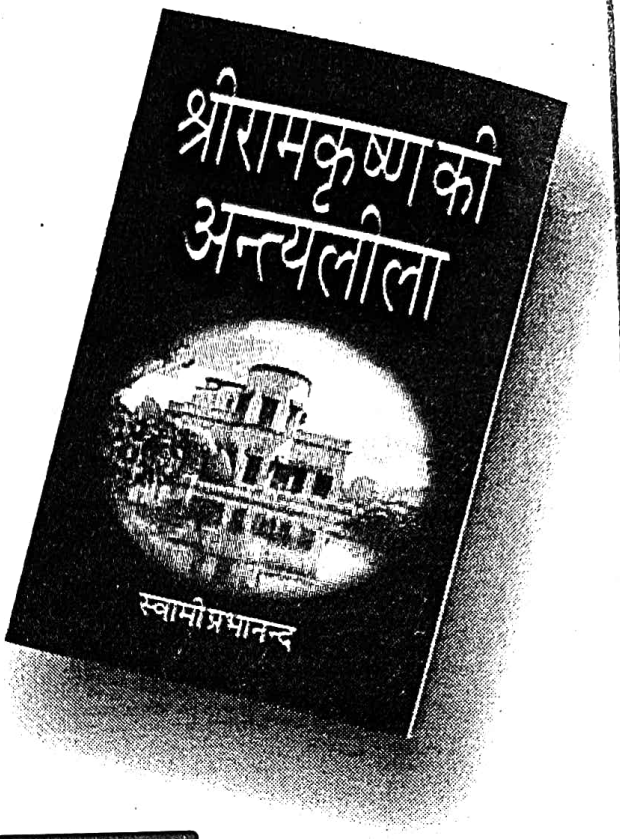

कुछ संग्राह्य पुस्तकें

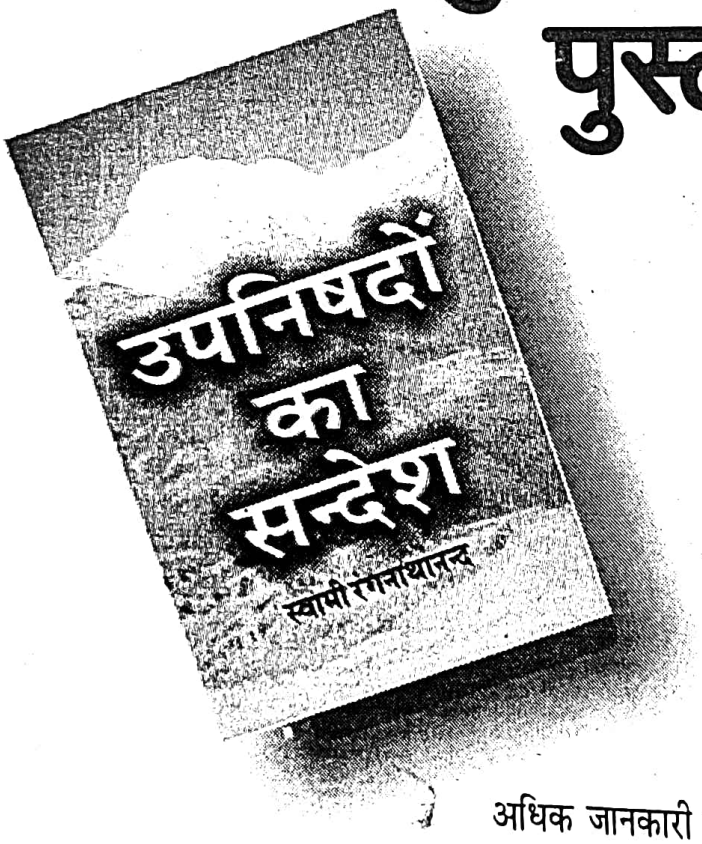

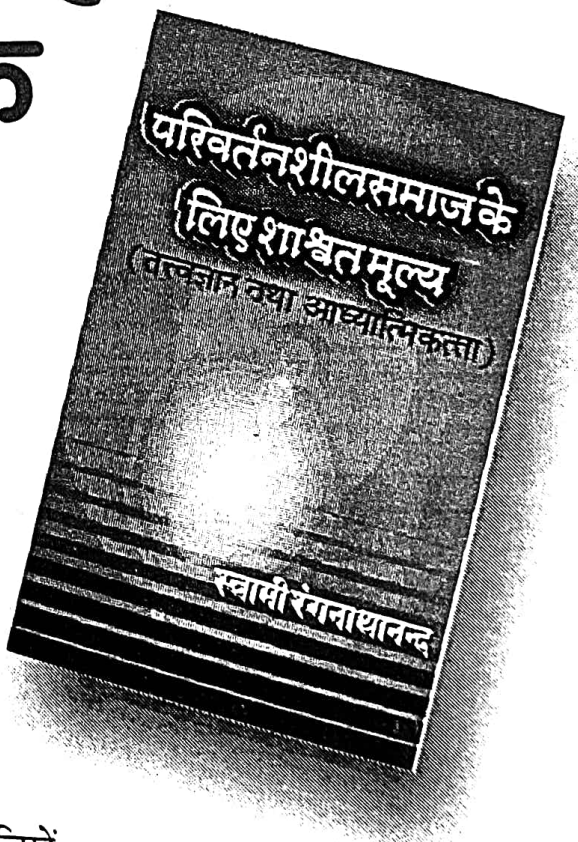

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ